DAMAGE BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178121
UNIVERSAL LIBRARY

इन्शुअरन्स आज के जमाने में प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है।

मध्य-भारत के चीफ एजन्टस्

बालकृष्ण शाह एण्ड कंपनी.

स्वर्गीय मित्र रमाकांत द्विवेदी की स्मृति में संस्थापित

युग-प्रवर्तक ग्रंथमाला की तीसरी पुस्तक

नौ अगस्त

[कहानी संग्रह]

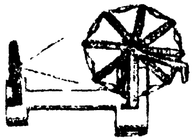

संपादक

प्रह्लाद पांडेय 'शशि'

सर्वाधिकार सुरक्षित

मार्च १९४४]

[मूल्य—एक रुपया

प्रकाशक—
प्रह्लाद पांडेय "शशि"
संचालक-युगप्रवर्तक ग्रन्थ माला
लोधीपुरा इन्दौर-मध्यभारत

प्रथम संस्करण
१०००

मुद्रक:-- के. बी. वर्मा.
आनन्द अरुणोदय प्रिंटिंग वर्क्स
सांठाबाजार, इन्दौर

भूमिका

"नौ अगस्त" पढ़कर आप चौंकियेगा नहीं, यह यातायात के साधन नष्ट करने, टेलीफोन के तार काटने, पुलिस चौकी में आग लगाने, पोस्ट आफिस जलाने और इस तरह सत्ता के उलटने का षड्यंत्र नहीं है।

"नौ अगस्त" डाका, चोरी, लूटपाट, अराजकता तथा हत्याओं का खूनी आतंक नहीं है।

"नौ अगस्त" गुलामखाने की गन्दी नालों में सड़ते हुए कीड़ों जैसे मनुष्यों का मुर्दा स्वर नहीं है।

"नौ अगस्त" संसार के पूंजीवादियों के द्वारा गाड़े हुए गुलामी के झंडे उखाड़नेवालों को, तरुण लेखकों का एक बलवान आश्वासन है।

"नौ अगस्त" संगीनों के बलपर माता सरस्वती के आराधना भवन पर कपट-कब्जा जमाने वाले हुक्काम परस्त असाहित्यिक धनवानों के विरुद्ध प्रतिभा संपन्न किन्तु कुचले हुए नवोदित साहित्यकारों द्वारा उठाया हुआ विद्रोह का झंडा है।

" **नौ अगस्त** " अपने साहित्यिक स्वाभिमान को दफना कर मिर्जापुरी लोटे की तरह साहित्यिक संस्थाओं में महत्पद प्राप्तिके लिये तथा कुत्तोंकी तरह चन्द चांदीके टुकड़ों पर धनवानों के आसपास उनके इशारों पर दुमहिला हिलाकर तरुण साहित्य कारों पर दूर ही से झपट कर फाड़खाने वाले नामधारी किन्तु बुर्जुआ साहित्यकारों के धड़कते हुए रंगीन कलेजों पर वज्र का धुंवा है।

" **नौ अगस्त** " उन बुजदिल लेखकों, कवियों और पत्रकारों के खिलाफ संगठित क्रांतिकारी बिगुल है जो आने वाली संतान के लिये दूषित मौन का रास्ता बानाने, आने वाले जमाने के लिये अपना अन्याय का समर्थन करने वाला कलंकित इतिहास छोड़ जाने तथा राष्ट्र के नव जागरण के साथ स्वतंत्र विचारक साहित्यकारों की खिल्ली उड़ा कर सदियों के पराधीनता के पाप को वरदान देने का भयंकर अपराध कर रहे हैं।

अनेक कठिनाइयों के कारण पुस्तक देर से छप रही है - आशा है पाठक क्षमा करेंगे। इसके प्रकाशन में हजारीलाल राजमल एण्ड कंपनी क्लाथ मार्केट इन्दौरने ११) दिये हैं—धन्यवाद

इन्दौर
२६ जनवरी १९४४

प्रह्लाद पांडेय "शशि"

कहानियां

क्र. सं.	कहानी	लेखक	पृष्ठ
१	इन्क़लाब	मुहम्मद नबी अब्बासी	१
२	सफर का साथी	श्याम सुंदर व्यास	२२
३	क्रांति की प्रथम भेंट	रामप्रकाश मलहोत्रा	३८
४	अहमदिया मंदिर और मोहनिया मसजिद	स्वरूपकुमार गांगेय	४९
५	वह क्रांतिकारी था	श्री 'हरि'	५५
६	मरियम	दीनानाथ व्यास 'विशारद'	६२
७	बलिदान	रामेश्वरप्रसाद दुबे 'मंजु'	७१
८	नौ अगस्त	श्रीनिवास जोशी बी. ए.	७६
९	वह बहन	नारायणप्रसाद शुक्ल	८६
१०	शिकार	सत्येन्द्र खुजनेरी	९८
११	त्याग	गजानन सोनी	१०४
१२	फ़ीस	"अहसन"	११०

समर्पण

जिनकी धुंधली स्मृति आज भी अपने साहित्यिक अधिकार के लिये

मध्यभारत के तरुण साहित्यकारों को निरंतर संघर्ष करके

स्वाभिमान सहित स्वयं जीने और दूसरों को

जीने देने के लिये ज्वलंत प्रेरणा देती है।

उन्हीं श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य

-समिति इन्दौर के संस्थापक

कर्मवीर स्वर्गीय डॉ. सरजुप्रसादजी तिवारी

की स्वर्गस्थ आत्मा को

यह पुस्तक सादर समर्पित है।

प्रह्लाद पांडेय 'शशि'

अन्तिम दर्शन

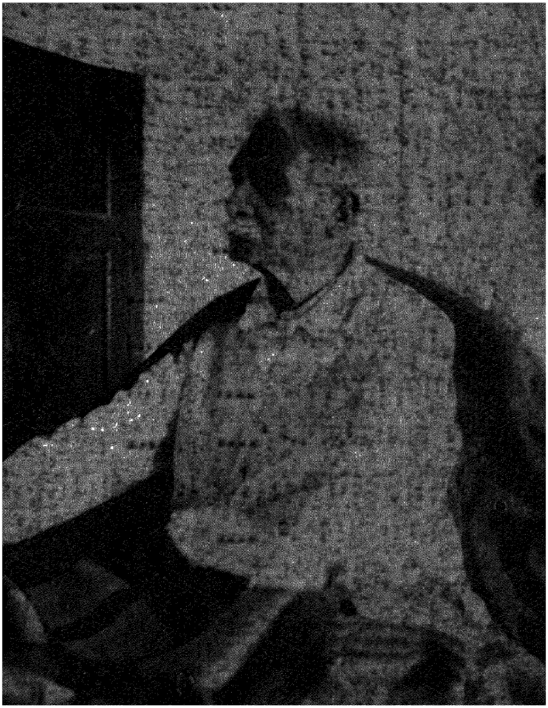

स्वर्गीय डॉ. सरजूप्रसादजी तिवारी (१८६५–१९३५)

इन्क़लाब

रचयिता-मुहम्मदनबी अब्बासी

ठाकुर सुरेन्द्रसिंह अपने ज़माने के एक सफल दारोगा थे। कैसे ही झूठे मामले को सच्चा बनाकर किसी को सज़ा दिला देना, बड़े बड़े क़त्ल रिश्वत लेकर रफ़ादफ़ा कर देना, किसी को बदनाम कर देना, किसी की इज्जत मिट्टी में मिला देना, ज़रा तिनक कर बातें करने पर चक्की पिसवाना ये उनके बायें हाथ के खेल थे।

दारोगा साहब का क़द लम्बा, और रंग खासा चिट्टा था। उम्र पचास के आस पास होने पर भी सूबेदारी का पानी इतनी तेज़ी से चढ गया था कि झुर्रियों को अपनी सत्ता जमाने की गुञ्जाइश ही न थी। आँखें उच्च अधिकारियों की जी हुजूरी में और गरीबों पर रोबदाब जमाने में अब भी कुशलता से काम करती थीं। पेट का उभार भी छाती की सतह से आगे बढ़ चुका था जो प्रायः प्रत्येक रिश्वतखोर अफ़सर के हुलिये में पाया जाता है।

अंग्रेजी राज कायम होने के समय से आज तक जितना नाम दारोगाजी के खानदान ने पाया उतना शायद ही किसी और ने पाया हो। वे कहा करते थे—"सन् ५७ के गदर

में हमारे दादा ने इस बहादुरी से विद्रोहियों का सामना और दमन किया कि यदि वे विद्रोहियों की सेना में मिल उनका भेद लेकर सारा भण्डाफोड़ न करते तो गदर का नक्शा ही कुछ और होता, न अंग्रेज़ रहते और न अंग्रेज़ी राज। आज जो कुछ वैभव भारत में अंग्रेजों का है उसका ख़ास कारण हमारे दादा के अमर कारनामे ही हैं।

भारत के राष्ट्रीय इतिहास में भले ही यह बात काले कारनामे के रूप में लिखी जाय किन्तु जिस वक्त अंग्रेज़ पृथ्वी के शेष भाग के भी अधिकारी बन जावेंगे उस समय तो भारत में अंग्रेजी राज की नींव जमाने वालों में उनके दादा का नाम अवश्य ही स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था।

पिछले सन् १४ के महायुद्ध में उनके चाचा ने इस बहादुरी से शत्रु का सामना किया कि उनके युद्ध में मारे जाने के बाद भी उनके बाल बच्चों के पास वायसराय के पास से "थैंक्स" का परवाना आया। पिछले असहयोग आन्दोलन में स्वयम् दारोगाजीने इतनी सफलता से दमन किया कि सरकार ने उनसे प्रसन्न होकर 'शमशेर जंग बहादुर' की उपाधि से उन्हें विभूषित किया।

दारोगाजी के सामने जब राष्ट्रीयता या नौकर शाही का प्रश्न आता तब वे कहा करते थे—"मनुष्य जिसका नमक

खाता है उसकी नौकरी करना, और हुक्म मानना उसका कर्तव्य है। क्योंकि इसी से तो पैसे की आमदनी होती है जो दुनियां में ऐश व आराम की चीज है। जिसकी बदौलत आधुनिक सभ्यता के अनुसार अफसर मातहत को, बेटा बाप को, औरत पति को, भाई बहन को, और नौकर मालिक को पूछने हैं। सिर्फ नौकरी ही एक ऐसा पेशा है जिससे बड़े-बड़े अफसरों से मुलाक़ात होती है ! और अगर कोई स्पष्ट वक्ता उनसे यों पूछ बैठता कि किसी और साधन से पैसा नहीं कमाया जा सकता ?, मुलाक़ात के और ज़रिये नहीं होते ? तब वे झल्ला जाया करते थे। प्रश्न पूछने वाला अगर उम्र में छोटा होता तो वे यह कहकर टाल दिया करते थे—"तुम्हें अभी दुनियां का अनुभव नहीं है कमाओगे तब मालूम पड़ेगा"। और यदि कोई बड़ा पूछता तो वे कह दिया करने थे—"इस विषय में यदि आपसे कुछ साफ साफ कहूँ तो शायद आपको नागवार मालूम पड़ेगा, छोड़िये बेकार सी बात है।"

रिश्वत को वे रिश्वत न कहकर मेहनताना कहा करते थे उसे लेने में उन्हें कोई उज्र न था, क्योंकि जिस आदमी को जो चीज़ उचित जान पड़े उसके लिये वह जायज़ है अगर दिल गवाही न दे तो नाजायज़। वे यह भी कहा करते थे कि सरकार भी इन सब बातों को जानती है तभी तो चुंगी के नाकेदार को ९) रुपये माहवार ही देकर सारा काम करवाती है क्योंकि उसे मालूम है कि ये लोग प्रजा से मेहनताना लेकर गुज़र करते हैं और करेंगे ही।

दारोगाजी का इकलौता लड़का धीरेन्द्र इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में एम० एस० सी० में था। दारोगाजी की तनख्वाह थी ६० रुपये और जिसमें से ५० रुपये तो वे उसे ही भेज दिया करते थे। उनका इरादा इसके बाद धीरेन्द्र को उच्च सैनिक शिक्षा के लिये विदेश भेजने का था। एक ही कसक उनके दिल में थी कि मेरी पीढ़ीमें किसी को 'विक्टोरिया क्रास' पाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ किन्तु उन्हें आशा थी कि सम्भव है धीर इस कमी को पूरी कर सकेगा।

ये सब बातें ऐसी थीं जिन पर साधारण बुद्धिमान मनुष्य भी निर्भीकतापूर्वक कह सकता था कि ये कितनी स्वार्थपूर्ण, राष्ट्रद्रोही और ओछी बुद्धि का परिचय देने वाली हैं।

× × ×

सुबह का नाश्ता करने के बाद दारोगाजी पुलिस थाने में आये और लगे सोचने पिछले क़त्ल के मामले में। असली क़ातिल तो फ़रार हो गया था लेकिन उन्होंने दूसरे को ही पकड़ लिया उसपर किसी प्रकार का सबूत न लगता था लेकिन किसी न किसी तरह उस बेगुनाह पर इलजाम दायर करना था नहीं तो फ़रार हो जाने के कुसूर में खुद दरोगाजी को ही अपनी जान का धोखा था; वे बड़े ध्यान मग्न हो क़ानून की जिल्दें उलट रहे थे कि इतने ही में पहरे पर खड़े कान्स्टेबल सुखाराम ने एक लिफाफा लाकर दारोगाजी को दिया। उनका ध्यान एकदम टूट गया देखा तो पते से मालूम हुआ कि है तो

यह धीर का ही लिफाफा पर आज यह बेमौके कैसे ? अभी तीन चार दिन ही तो हुए जब उसने रुपये मंगाये थे कहीं धीर बीमार तो नहीं है, उसे पैसों की जरूरत तो नहीं है ? इस प्रकार अनेकों शंकाएँ उनके मनमें आई और विद्रोह पैदा करने लगीं। लिफाफा खोला, धीरेन्द्र ने लिखा था—

पिताजी !

आपका भेजा हुआ १५० रुपये का मनीऑर्डर मिला। मैं मनीऑर्डर के रुपये कोट में रखकर खेल में लग गया खेल के बाद देखा कोट ही गायब हो गया सब जगह छानबीन की किन्तु कोई पता न चला, मैंने २-३ माह से हॉटेल का कुछ भी नहीं चुकाया परीक्षा की फीस भी मेरे सब साथियों ने जमा करा दी है खेद है मैं जमा न करा सका, मुझे क्षमा कर पत्र को देखते ही दो सौ रुपये भेज दें नहीं तो मैं फीस जमा न करा सकूंगा और दो साल की मेहनत बेकार जायगी। × × × × × ।

आज्ञाकारी

धीरेन्द्रकुमार

पत्र को पढ़ते ही दारोगाजी जलकर खाक हो गये और अन्दर ही अन्दर लगे बड़बडाने............न मालूम किन मुसीबतों से खून का पानी बहाकर रुपया कमाता हूं, खुद खाता नहीं इन्हें खिलाता हूं, पर न जाने इस बीसवीं सदी की औलाद

कैसी लापरवाह हुई, कुछ खबर ही नहीं; लिख भेजा बाप को—और भेज दो, जैसे मेरे घर में रुपये का पेड़ लगा है कि जब चाहा तब तोड़ लिये। इतना कह उन्होंने दोनों हाथ टेबल पर मारे; लिफाफा हाथ से छूटकर टेबल पर आ गिरा उन्होंने तैश में आकर उसे शीघ्र उठाया और चिन्दे-चिन्दे करके फेंक दिया।

क्रोध में आदमी के होश हवास ठिकाने नहीं रहते, थोड़ी देर के बाद जब उनका दिमाग ठीक रास्ते पर आया तब उन्होंने विचारा—मैंने व्यर्थ ही धीर का खत फाड़ा, एक समय था जब वह मुझसे पहिली बार अलग हुआ था तब वियोग की आग इतनी प्रबल थी कि रोज़ मैं उसके खत का इन्तजार किया करता था जब पत्र आता उसे चूम लेता, और उसको सम्भाल कर रखता था। उसी धीर! इकलौते धीर!! का इतना अपमान—बीस बर्षों से उसका हजारों रुपयों का खर्च उठा रहा हूं आज दो सौ और सही, जहाँ किसी को धौंस दी शिकार तैयार है और रुपये चले भी गये तो उसमें धीर का क्या दोष, जब गुम हो गये तो उसमें उसका क्या बस? और ये डे सौ रुपये भी मेरी गांठ से कहां गये थे मैं तो मनीऑर्डर करने भी नहीं गया। सुखाराम खुद ही उस अफीम वाले को चरस के मामले में फँसाकर रुपये ले आया था और आज जो ये बीस हजार की बिल्डिंग बना रहा हूं ये किसके लिये।

रिश्वत की लत और पुत्र स्नेह की ज्वाला ने दारोगाजी को फिर उसकाया, उन्होंने पुकारा—

" सुखाराम ! "

" ओ सुखाराम !! "

" जी हुज़ूर कहकर दीन मुहम्मद ने एक लंबी सलाम देते हुए कमरे में प्रवेश किया और कांपते हुए बोला—

" सुखाराम तो जरा बाहर गया है ।

" अच्छा तुम्हीं चले जाओ और सेठ चरणदास घरमदास की दूकान पर जाकर उन्हें बुला लाओ । "

" बहुत अच्छा " कह दीन मुह्म्मद दबे पांव वहां से चल दिया ।

× × ×

सेठ चरणदास घरमदास नगर के प्रतिष्ठित और सफल व्यापारियों में से हैं । कई हवेलियां हैं, मिल के शेअर होल्डर हैं, बैंकों में फिक्स डिपाजिट है, सैकड़ों आदमियों का लेन देन है, साख सेठजी की काफी दृढ़ता से जमी हुई है ।

मुकदमेबाजी में आप काफी कुशल हैं । जहां कोई मजिस्ट्रेट, या पुलिस अधिकारी आया उसे मान-पत्र भेंट करके अपना सिक्का जमाने में देर नहीं लगती उसमें वे खूब अलल्ले-तलल्ले से खर्च करते हैं, कई दिनों तक भोज हुआ करते हैं लेकिन इस खर्चे का उन्हें जरा भी मलाल नहीं होता किन्तु कोई गरीब आसामी सूद कम करने की गरज से चाहे उनके चरणों पर लोट जाता है तो भी वे नहीं पिघलते ।

चारों धाम की वे यात्रा कर आये हैं शायद इससे पाप धुल जावें ईश्वर से एक ही प्रार्थना है और वह है पुत्र—आकांक्षा ।

इसके उपरान्त यदि किसी ऐसे मनुष्य से जो उनके चंगुल में फंस चुका है सेठजी के बारे में पूछा जाय तो अफसोस ! वह सेठजी को पहिले नंबर का सूदखोर, कंजूस, अन्यायी और गरीबों का खून चूसकर अपने ऐश की हिना बनाने वाला बतावेगा ।

सेठजी की ऐसी बातों, उनके अत्याचारों और उनकी नीच प्रवृत्तियों को देखकर लोग कहा करते थे—" देखा ना ! कैसा असर औलाद पर पड़ा अभी दो बरस भी नहीं हुए कंचन की शादी को और उसका सुहाग लुट गया। गरीब की आह ऐसी ही होती है करनेवाले पर नहीं पड़ती औलादके ही आगे आती है ।"

× × ×

उसी दिन सुबह—

सेठ साहब को एक चमार के मकान की कुर्की करना थी, चमार मर चुका था सेठ साहब ने विधवा पर ७५ रुपये की डिग्री लादी थी, कुर्की के पूर्व चमारिन आई और सेठजी के पैरों पर लोट गई—

" सेठ साहब !
सरकार !!

मालिक साहब !!! बच्चों पर रहम करो, इन नंगे भूखों पर, भगवान के नाम पर, आपके बाल-बच्चों की खैरात; मुझे माफ कर दो। मेरे पास तीस रुपये के चांदी के कुछ गहने हैं लेलो, मेरा, घर मत छीनो....विधवा ने आंसुओं के दो बिन्दु चरणों पर बलि चढ़ा दिये।

" सेठ साहब ! इनका बाप नहीं है, ये अनाथ हैं, भूखे तो मरते ही हैं बेघरबार हो जावेंगे तो कहां ठोकर खाते फिरेंगे ! आपकी ऊँची अटारियाँ हैं झोपड़ी को छोड़ दो, गरीब मर जावेंगे, मैं लुट जाऊंगी ! बरबाद हो जाऊंगी !! बेघरबार हो जाऊंगी !!! बाल-बच्चों के वास्ते इसे छोड़ दो...........। "

सेठजी का क्रूर कलेजा कुछ क्षणों के लिये पिघला, थोड़ी देर के लिये वे अपने को भूल गये नज़र उठाकर देखा एक दो नहीं पूरे आठ की फौज है, इन्हें छोड दूं ? केवल ७९) रुपये की तो बात ही है। आज न सही पचहत्तर रुपये; मेरे तो बीसों हवेलियां खड़ी हैं, हजारों नकद हैं लेकिन इस बेचारी अनाथ का कौन है, कितनी गिरी हुई दशा है...............।

सोचते सोचते सेठजी का दिल डांवाडोल हो रहा था एक तरफ देखते—" माया—पचहत्तर रुपये और अगर न आवें तो पांचसौ रुपये का मकान, आसपास अच्छी आबहवा, शहर की गन्दी नहरियों से अलग, वायु शुद्ध.........। "

पटाक्षेप के बाद दूसरा पर्दा सामने आया—" कितनी

गिरी दशा है चमारिन की, विधवा के पीछे आठ बच्चे हैं क्या करके पालन करती होगी, कैसे..........।"

दोनों पहलुओं का दोलन शुरू हो गया जो प्रत्येक मनुष्य के सामने दो विषम परिस्थितियों के होने पर होने लगता है अन्त में उन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार "माया" का पलवा भारी जान पड़ा और साथ ही साथ उनकी नीच प्रवृत्ति ने दलील पेश की—"ऐसी परिस्थितियाँ तो प्रत्येक की हैं ऊपर से कोई सफेद पोश है कोई रंगीला किन्तु अन्दर से सब नंगे ही है, बून्द-बून्द से ही घड़ा भरता है और बून्द-बून्द से ही खाली हो जाता है, अगर मैंने यही दशा रखी तो थोड़े दिनों में मुझे खाने के लाले पड़ जावेंगे"। उन्हें माया अधिक जान पड़ी चमारिन को झूठी सान्त्वना देते हुए बोले—

"जा मैं देखूंगा" उनकी बोली में इतनी निराशा भरी थी कि चमारिन हताश हो वापस लौट गई! सेठजी ने मुनीम को बुलाकर कहा—

"देखना आज तनसुख चमार के मकान की कुर्की करना है चले जाना मैं भी रोटी खाकर आता ही हूं" इतना कह वे भोजन करने को जाने ही वाले थे कि किसी ने आवाज दी—

"सेठ साहब!"

"कौन है?" सेठ साहब ने पूछा।

"कान्स्टेबल आया है ?"

"पूछो—क्यों ?"

"कहता है आपको दारोगाजी ने याद किया है"

"अच्छा आते हैं" इतना कह वे बिना रोटी खाये जाने की तैयारी करने लगे।

* * * *

रोटी बनकर तैयार हो गई, और ठण्डी हो गई घर में अभी किसी ने रोटी नहीं खाई, तीन बज चुके थे इतने ही में सेठजी आ गये। चोटी से एड़ी तक पसीने में तर थे चेहरे पर ग्लानि, क्रोध और विवशता के भाव स्पष्ट रूप से चमक रहे थे उनको आते देखकर कंचन ने कहा—"रोटी तैयार है"

"मुझे आज भूख नहीं है मैं आज रोटी नहीं खाऊंगा" इतना कह बिना कपड़े उतारे मसहरी पर जा लेटे। बहुत देर तक न जाने क्या सोचते सोचते वे एकदम बड़बड़ाने लगे—

"अन्याय ! महा अन्याय !! यह पुलिस के महकमे का सफेद झूंठ है। जितना इन्हें मैंने समझा इन्होंने मुझे उतना ही धोखा दिया; नहीं दूंगा, इस कुत्ते को नहीं दूंगा हराम के तीन सौ रुपये। हाय रे पापी ! थोड़ीसी माया के लिये इतना पाप !! इतनी नीचता !!! यहां तक इरादा !!!!

हाय रे हिन्दू समाज ! हाय तेरी कुरीतियां, इन्हीं ने

तुझे इतना नीचे गिरा दिया। कंचन ! क्या कंचन इतनी पापिनी है ? हाय ! सुहाग लुटते देर न लगी, मांग का रंग फीका पड़ने न पाया कि ये कलंक। क्यों न इसमें विधवा विबाह रखा गया नहीं तो आज ये दिन न आता।"

उनकी इन अप्रासांगिक बातों को सेठानी खुद भी न समझ पाई घबराकर पूछने लगी—

"क्यों ठीक तो है ? आज तुम्हें क्या हो गया ? घबराते क्यों हो ? कुछ तो कहो।"

सेठजी जैसे अधमरे हो गये हों, हांपते हुए बोले—

"आज सारी लाज जा रही है—बचाओ।"

"तुम साफ़-साफ क्यों नहीं कहते ? क्या हुआ" सेठानी ने भयभीत ,किन्तु गम्भीरता से पूछा।

"मुझे साफ़-साफ कहते शर्म आती है, घृणा होती है"।

"ऐसी बात जो मुझसे शर्म ?"

"क्या कंचन तो इधर नहीं है" उन्होंने इधर उधर घूमकर पूछा।

"नहीं, वह तो पानी लेने गई है"

"सूबेदार कहता है तुम्हारी............इतना कहते-कहते वे गम्भीर हो गये, नज़रों को ज़मीन में तेज़ी से गड़ाते हुए वे चुप हो गये।

"हाँ, तुम्हारी........क्या ?" सेठानी ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से पूछा।

"तुम्हारी विधवा लड़की के..........है ऐसा मुझे एक मुखबिर से मालूम पड़ा है"

"हैं!" आश्चर्य चकित हो जिज्ञासा भरी निगाहों से सेठानी ने कहा।

"कंचन पर ये झूंठा दोष?"

"झूंठा नहीं वह इसे सच्चा साबित करना चाहता है" सेठजी ने चिन्ता में डूबे हुए स्वर में कहा।

"तो साँच को क्या आँच"

"नहीं, ऐसी बातें निर्मूल साबित किये बिना क़ानूनन जुर्म बताई गई हैं। वह उसकी डाक्टरी कराकर बदनाम कराना चाहता है"

"आखिर ऐसा वह क्यों चाहता है?"

"उसने मुझसे तीन सौ रुपये ऐंठने की सोची है" वे कुछ गंभीर स्वर में बोले।

"उससे तो तुम्हारा अच्छा परिचय था न?"

"लेकिन बेमुरव्वत की आंखें और पैसे की प्यास किसी का परिचय और इज्जत नहीं देखा करतीं।"

"तो वहचाहता क्या है?"

"वह दो में से एक—तीन सौ रुपये ठंडे कानों दे जाओ नहीं तो.........."

"नहीं तो क्या?

"नहीं तो जब तक लड़की की डाक्टरी न हो जावे तब तक हिरासत में रखा जावे।"

"तो हमें डाक्टरी में क्या हर्ज है ?" मानों सेठानी ने सारी समस्या हल करली हो।

"लेकिन मेरी इज्जत का भी ख्याल है तुम्हें ! ----एक नगर सेठ की लडकी झूंठे इलजाम में पकड़ी जावे कितनी बुरी बात है।

"तो फिर क्या किया जावे ?"

"तुम्हीं सोचो"

"तो क्या सूबेदार ने ऐसा कहा कि तीन सौ रुपयें लेकर छोड़ दूंगा"

"नहीं तो----उसने तो सिर्फ इतना ही कहा कि जाओ इस पर पूरा विचार करो। इतना सुन जब मैं आने लगा तब मुंशी ने कहा कि अगर आप चाहो तो तीन सौ रुपये में हम यह मामला दबा सकते हैं। ये तो सब इन्हीं के चट्टे-बट्टे हैं।"

दोनों चुप हो गये दारोगा की डाली चिंगारी से भड़कती हुई आग को दोनों अपनी युक्ति से बुझाने की कोशिश करने लगे। एकाएक सेठजी को फिर ख़याल आया उन्होंने मुनीम को बुलाकर कहा—

"क्या तनसुख चमार के मकान पर अमलदारी हो गई ?"

" जी हां, हो तो गई किन्तु बड़ी परेशानी से "

सेठजी को इस कुर्की की बर्बर विजय पर कुछ क्षणों के लिये घृणा हुई किन्तु मिट गई जैसे उन्हें कुछ क्षोभ ही न हुआ हो वे सोचने लगे—मैंने तो नक़द ९०) रुपये देकर तीन चार साल के बाद मुक़दमा लड़ते-लड़ते ७५ रुपये वसूल किये किंतु यह तो क्षणिक वार्ता से ही तीन सौ रुपये ऐंठना चाहता है—मानो इस समय वे किसी सत्य के पथ पर चलने वाले महात्मा हों—वे बोल उठे—

" कितना घोर अन्याय है, क्या ईश्वर इन्हें कभी इसका बदला देगा ? बालू की भीत और अन्याय का साम्राज्य कभी क़ायम नहीं रह सकता । "

" सेठ साहब ! "

" सेठ साहब !! " किसी ने पुकारा

" कौन पुकार रहा है ? "

" सुबह वाला सिपाही है " सिपाही का नाम सुनते ही सेठजी ऐसे सहमे जैसे कसाई से गाय, बोले—

" कहदो, अभी लेकर आ रहे हैं "

" कुछ मंगाया नहीं है खुद सेठ साहब को ही याद किया है "

इतना सुनने पर सेठजी को ध्यान आया कि कान्स्टेबल बुलाने आया है रुपये मांगने नहीं, वे बोले—

" अच्छा अभी आता हूं "

" अब वे शीघ्र सोचने लगे क्या किया जावे—उनके सामने फिर दो विभिन्न परिस्थितियों का दोलन होने लगा।"

एक—" माया........ ...सिर्फ तीन सौ रुपये, इतने तो मैं किसी को मान-पत्र देने में खर्च कर देता हूं, न सही कुछ दूकानों का एक माह का किराया।"

दो—" इज़्ज़त.............क्या मैं इस तुच्छ बात के लिये इज़्ज़त बिगाड़ दूं ?, अपनी साख खोऊं ? क्या कहेगी दुनियां अमुक की लड़की........ ....।"

कितनी विषमता है एक ही परिस्थिति के दो भिन्न-भिन्न पहलुओं में—" मनुष्य अपनी इज़्ज़त के लिये माया ठुकरा सकता है किंतु थोड़े से अपने स्वार्थ के लिये दूसरे का घरबार तहस-नहस करने को तैयार रहता है—ठीक है अपनी लगी दिल पर और दूसरे की दीवार में होती है।"

उनकी आत्मा ने निर्णय दिया—" कुछ भी हो मैं अपना अपमान नहीं होने दूंगा।"

इतना कह उन्होंने चाबियां निकालीं, तिजोरी खोली देखा----हज़ारों की संख्या में रुपये, नोट पड़े हैं छाती पर हाथ रखकर, कड़ी हिम्मत कर सैफ़ में से तीन सौ रुपये निकाले,

तिजोरी बन्द कर दी। घर से नीचे उतरे और नोटों को लेकर पुलिस चौकी की ओर चल दिये।

× × × ×

तीन सप्ताह बाद—

"शायद तुमने फीस तो दे ही दी होगी ?" दारोगाजी ने चिन्तित स्वर में धीरेन्द्र से पूछा।

"कहां---, पिताजी मैंने आपको लिखा था ना! रुपये गुम हो गये" धीरेन्द्र ने अपने चेचक के ज़ख्म खुजाते हुए कहा।

"तो तुम्हें मेरे भेजे हुए दो सौ रुपये नहीं मिले ? दारोगाजी ने चौंक कर पूछा।"

"नहीं पिताजी" धीरेन्द्र ने फिर ज़ख़म खुजाते हुए कहा।

"देखो धीर ज़ख़मों को मत खुजाओ, वे बीमारी को बढ़ाते हैं, हाँ तो तुम्हें रुपये नहीं मिले ? मेरे पास तो रसीद भी आ चुकी" इतना कहकर उन्होंने तार में लगी रसीद धीरेन्द्र को बताई। रसीद को देखते ही धीर चौंक पड़ा—

"पिताजी ये मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं। ये जाली हस्ताक्षर हैं। मेरा एक साथी बिलकुल मुझ जैसे हस्ताक्षर कर लेता है ये सब, ये सब उसी का जाल है।"

"जाली हस्ताक्षर ?" दारोगाजी ने माथा ठोंक लिया हाय क़िस्मत।

"ठीक है धीर--तुम अच्छे हो जाओ मैं सब देखलूंगा।"

दारोगाजी का कलेजा उन्हीं को कोस रहा था—"सच है हराम की आमदनी कभी नहीं फलती मैं अब इस काम को.... ईश्वर तू मेरे इकलौते धीर को अच्छा कर दे।"

धीरेन्द्र की चेचक के बढ़ने का आज तीसरा दिन था। डाक्टर ने कह दिया अगर आज की रात शान्ति मे गुजर गई तो कोई फिकर नहीं वरना इसका बचना कठिन है। दारोगा साहब को इसी की विशेष चिन्ता थी, उन्होंने उठकर देखा धीर को नीद आगई थी।

"पिताजी! पिताजी!! धीरेन्द्र ने स्वप्न मे चौंककर कर कहा।"

"क्या हुआ धीर, नींद में हो?"

"पिताजी बहुत भयानक स्वप्न देखा—कंचन का पति आत्माराम............मुझसे........" कहते कहते धीरेन्द्र फिर गफ़लत में हो गया, दारोगाजी घबराये।

"क्या हुआ, धीरेन्द्र बेटा बोलो।"

"आत्माराम मुझसे कह रहा है----आओ धीर हम तुम दुनिया के जंजाल से..........." इतना कह हांपते-हांपते वह चुप हो गया जैसे वह थक गया हो।

दारोगाजी की कमर टूट गई "बेटा---, बेटा धीर !"

"पिताजी ! पानी"

"दारोगाजी ने सजल नैत्रों से पानी दिया, रोगी फिर थोड़ो देर के बाद चिल्लाया---- "

"पिताजी ! रिश्वत बुरी पिताजी........रि........श्व........त...." रोगी चुप हो गया।

दारोगाजी घबराये--"क्या बुढ़ापे की टेक जा रही है ? क्या मेरी किस्मत में यही लिखा था ?" उन्होंने नाड़ी देखी कुछ धीमी चल रही थी उन्होंने शीघ्र डाक्टर को बुलाया। रात क दो बजे थे----

डाक्टर ने नाड़ी देखकर कहा---"इन्हें अभी कोई गहरा धक्का है"

दारोगाजी समझ गये, सोचने लगे----

"आज मेरा लाल मेरे हाथों से जा रहा है बुढ़ापे की लकड़ी, आँखों का सितारा, जीवन की ज्योति बुझना चाहती है।

"हे ! ईश्वर तु इसे अच्छा करदे, ईश्वर तु ही है आज से अगर एक पाई भी रिश्वत ली तो मेरी प्यारी, इष्ट वस्तु उठा लेना, ईश्वर मैं पापी हूँ" कहते कहते वे पलंग से टिककर फूट-फूट कर रोने लगे, आंसू गिराने के बाद कुछ शान्ति हुई।

धीरेन्द्र ने आंखें खोलीं।

"कहो कैसी तबियत है ?" डाक्टर ने पूछा।

"ठीक है, दिल पर कुछ बोझ है।"

"अच्छे हो जाओगे"

"इन्हें अब आराम से नींद लेने दो" इतना कह डाक्टर साहब दारोगाजी को आश्वासन दिलाकर वहां से चल दिये।

चार दिन बाद—धीरेन्द्र के चेचक के जख्मों पर पपड़ी जमना प्रारम्भ हो गई।

× × × ×

एक सप्ताह बाद—

जनता ने नगर से निकलने वाले अखबारों में पढ़ा—"परिवर्तन ! महान् परिवर्तन !!"

"नौकरशाही का बहिष्कार" मालूम हुआ है कि नगर के प्रसिद्ध दारोगा सुरेन्द्रसिंहजी ने पुलिस की नौकरी से इस्तीफा दे दिया है और अब राष्ट्रीयता की ओर झुके हैं, हमें बड़ा हर्ष है कि वर्तमान समय में दारोगाजी ने ऐसा काम करके एक नया आदर्श उपस्थित किया है।"

× × × ×

जुलूस निकल रहा था पुलिस कमिश्नर ने आज्ञा दी----"रोक दो जुलूस को"

" इन्क़लाब—जिन्दाबाद "

" नौकरशाही—हो बरबाद " के नारे सुनाई पड़ने लगे। कमिश्नर ने आगे बढ़कर देखा—

" कौन—शमशेर जंगबहादुर—सुरेन्द्रसिंह ? "

आवाज़ आई—" नहीं— "

" भारत माँ का तुच्छ पुजारी, सुरेन्द्रसिंह "

नारा लगाया—

" वन्दे—मातरम् "

" करेंगे—या—मरेंगे "

" आज़ाद भारत—ज़िन्दाबाद ! "

जुलूस निकल रहा था, हवा बन्द थी, लोग मग्न हो चले जा रहे थे।

२६ जनवरी १९४३ }
स्वाधीनता दिवस }

सफर का साथी

रचयिता—श्यामसुंदर व्यास

उचक्कों की तरह ताक रहे थे वे—जगह की खोज में। अन्त में वे मेरे डिब्बे में आ धमके। चारों ओर अपनी नजर घुमा कर बाद में वे मेरे समीप ही आ बैठे। मुझे देख उनकी आंखों में एक हलकी सी चमक पैदा हुई। परन्तु क्यों हुई? यह समझ सकना मेरे लिये टेढ़ी खीर थी। मेरी सहज बुद्धि ने यही अनुमान किया कि शायद मुझे भी अपनी ही तरह खद्दर पोश पा वे मन ही मन खिल उठे हों और उस प्रसन्नता की झलक बरबस आंखों द्वारा प्रगट हो गई हो। एकाएक उन्हें कुछ कहता देख मेरी विचार शृंखला टूट गई।

"अजब परेशानी है"—वे अपनी दीवारदार खादी की टोपी से हवा उड़ाते हुए कह रहे थे—"सफर क्या करना है आफत मोल लेना है, फिर यात्री भी तो विचित्र जीव हैं। मिल जुल कर रहना तो जानते ही नहीं, सिवाय धक्का मुक्की करने के"—और फिर वे मेरी ओर देखने लगे।

तब मैं समझा कि ये सारी बातें मुझे ही सुनाई जा रही थीं। सभ्यता के नाते कुछ न कुछ कहना आवश्यक था, फिर वे उम्र में भी बड़े थे। मैंने उनकी बातों का समर्थन करते हुए कहा।—"जी हां बात तो सत्य है"।

"अभी सत्य ही क्या, ध्रुव सत्य है"—अपनी बातों को और भी पुष्ट बनाते हुए वे बोले—"हम लोग हिल मिल कर रहना तो जानते ही नहीं। सिवाय लड़ाई झगड़े के हमने और कुछ भी नहीं सीखा। वैमनस्य की आग ने ही हमारे देश की यह दुर्दशा कर डाली है, फिर भी ना समझ हैं—वही बाबा आदम के ज़माने के"

"वास्तव में हमारी ऐसी ही दशा है, हम अभी तक लकीर के फकीर हैं"। मैंने भी कुछ दुःख प्रगट करते हुए कहा।

वे आगे कुछ कहना ही चाहते थे कि अखबार वाला उधर से चिल्लाता हुआ निकला। उन्होंने 'हिन्दुस्तान' की एक प्रति खरीद ली। क्षण भर पश्चात् गाड़ी भी चल दी और वे अखबार पढ़ने में तल्लीन हो गये। उस रोज मैंने भी अखबार नहीं देखा था। मैंने उनसे कहा—"एक पन्ना मुझे दे सकते हैं क्या?"

"जी हां, ज़रूर" और बीच का पन्ना निकाल, उन्होंने मुझे थमा दिया कुछ समय तक हम अखबार पढ़ते रहे; और जब हमने पढ़ना बन्द किया तो उनके मुंह से निकल पड़ी एक सर्द आह। बात ही ऐसी थी। अहमदाबाद में गोली चली थी। "क्या आपका विश्वास है कि हम अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे?" अकस्मात उन्होंने मुझसे प्रश्न किया।

"कम से कम हिन्दुस्तान की परिस्थिति को देखते हुए मैं अहिंसा को ही उचित समझता हूं—" मैंने पशोपेश में पड़ते हुए उत्तर दिया।

"भूल है, क्या गरीब को बनियां उसकी हड़पी हुई वस्तु मिन्नतें करने पर दे देता है ?"

"नहीं तो"

"तो आपको स्मरण रखना चाहिये कि नेपोलियन ने ब्रिटिशों को पक्का बनियां बताया है, बस इस बात पर सोच लीजिये।

मैं चुप हो गया, क्या जवाब देता। जो भी मैं अहिंसा मे पूर्ण विश्वास नहीं रखता तो भी अपने आपको अहिंसा के चोले में छिपाया चाहता हूं। अपने हिंसक विचारों को मैं एक दम दूसरों पर स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं करता। मैंने मुस्कराते हुए कहा—"आप तो आतंकवादी जान पड़ते हैं।"

"आप दुरुस्त फ़रमाते हैं"। ज़रा गम्भीर स्वर में वे बोले—

—"चुंकि आप सहृदय एवं देश प्रेमी हैं मैं आपके सम्मुख अपने रहस्यों को प्रगट करने में अपनी हानि नहीं समझता। यदि आपको मेरी बातों में कुछ दिलचस्पी हो तो अर्ज़ करूं।"

"फरमाइये न। मैं तो चाहता हूं कि आपकी बातों से कुछ शिक्षा ग्रहण करूं"—मैने कहा।

"आप कहां तक तशरीफ ले जा रहे हैं ?"

"जी, बम्बई तक"।

"तब तो मैं अपनी बातें आपको अच्छी तरह सुना सकूंगा।"

इतने में स्टेशन आ गया और हमारी बातों का क्रम टूट गया। मेरे अपने लिये मना करते रहने पर भी उन्होंने चाय मंगाई। पैसों के लिये भी खींचा तानी हुई, परन्तु उन्होंने मेरी एक न चलने दी। गाड़ी के चलने पर अपने चेहरे पर गम्भीरता का रंग चढ़ा, वे कहने लगे—"मेरे मित्र! मेरा अधिकांश समय महान् व्यक्तियों के बीच गुजरा है। सोलह वर्ष की अवस्था में मेरा परिचय रासबिहारी घोष से हुआ; जिनका मुझ पर काफी प्रभाव पड़ा। खुदीराम बोस तथा युवक करतारसिंह की मृत्यु ने मेरा ध्यान आतंकवाद की ओर आकर्षित किया। पिंग्ले, रामप्रसाद "बिस्मिल" तथा आसफखां इत्यादि शहीदों के शौर्य को देख मेरा खून भी खौल उठा, परन्तु ऐसे कार्यों में भाग लेने के पूर्व अनुभव की बड़ी आवश्यकता रहती है। इसीलिये मैं कुछ दिन चुप रहा और बाद में भगतसिंह द्वारा संस्थापित "नव जवान भारत सभा" में काम करने लगा। इतना कहते कहते वे तीखी नजरों से मेरी ओर देखने लगे—मैं उनकी बातें ध्यान पूर्वक सुन रहा था।

"लेकिन कॉमरेड"—उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"ऐसे कार्यों में भाग लेना लोहे के चने चबाना है। कुछ गद्दारों की वजह से हम रात दिन परेशान होने लगे। किन्तु जब तक भगतसिंह रहे उनकी दाल न गलने पाई। परन्तु सन् १९३१ के मार्च महीने ने उस नर-केशरी को छीन लिया। इतना ही होकर न रह गया। "आजादजी" लखनऊ पार्क में मारे गये

और बटुकेश्वर दत्त काले पानी भेज दिये गये। तीनों की कमी से संस्था को भारी धक्का लगा और वह टूट गई। हमारे कितने ही साथी सरकारी मुखबिर बन गये और कितने ही अपने अपने रास्ते लगे।"

वे चुप हो गये।

मैंने उत्सुकता पूर्वक पूछा—"फिर क्या हुआ?"

"होता क्या? मेरे हृदय में काम करने की प्रबल इच्छा थी तथा विश्वासघाती जयचन्दों से बदला लेने की तीव्र उत्कंठा। मेरे दोस्त! मैंने एक संस्था का श्री गणेश किया, परन्तु विश्वास पात्रों के अभाव में असफलता हाथ लगी। दो तीन बार तो जेल जाते-जाते बचा। अपने जीवन में मैंने सात बार धोखा खाया।

"आप धन्य हैं—" मेरे मुंह से निकल पड़ा "सात बार धोखा खाने के बाद भी आप निराश न हुए। मैं तो सिर्फ दो बार में ही हिम्मत हार गया।"

"क्या आप भी धोखा खा चुके हैं? वे चौंक कर बोले।
"धोखा ही नहीं जेल की हवा भी"

"सचमुच"? मन की प्रसन्नता को छिपाने का प्रयत्न करते हुए साश्चर्य उन्होंने पूछा।

कुछ उत्तर न दे मेरे मन में विचार उठा कि ये महाशय प्रसन्न हो आश्चर्य क्यों प्रगट कर रहे हैं और उसपर भी प्रसन्नता को छिपाने का निरर्थक प्रयत्न भी। मेरी सहज बुद्धि ने यही सुझाया कि शायद अपनी तरह मुझे भी धोखा खाया व्यक्ति समझ और साथ ही साथ जेल भी हो आने पर इन्हें आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों हुई होगी। थोड़ी ही देर बाद दोहद स्टेशन आ गया और वहां हम दोनों ने चाय पी। चाय पीते पीते ही उन्होंने मुझसे पूछा आपका शुभ नाम !

" रमेशचन्द्र " और आपका ! मैंने पूछा !

" मनोहरलाल " उन्होंने कहा।

इसके बाद बड़ोदा तक कोई बात नहीं हुई हम अपनी अपनी धुन में मस्त रहे। गोधरा के बाद से ही अन्धकार शुरू हो चुका था और गाड़ी ने भी कुछ विशेष गति पकड़ की थी। मैं चुपचाप पीछे छूटते हुए वृक्षों, खेतों और ऊसर भूमि को देखता जा रहा था। डिब्बों से निकलता हुआ प्रकाश किनारों के पेड़ों पर से हवा की तरह गुजरता जा रहा था—प्रकाश मानों हिंसक तलवार था और वृक्ष निर्दोष व्यक्ति। जो पेड़ दूर थे वे बचते जा रहे थे और जो पहुंच में थे वे कटते जा रहे थे। इसी तरह की कल्पना के पंखों पर उड़ते हुए हम लोग बड़ोदा आ धमके।

गाड़ी जाने में काफी समय था इसलिये मैं और मनोहरलाल

जी दोनों ही होटल में खाना खाने जा पहुंचे। जब खाना खा रहे थे तो होटल वाले के मुंह से सुना कि बम्बई में हिन्दू मुस्लिम दंगा हो गया। यह सुन मनोहरलालजी खाते-खाते रुक गये और मुझसे बोले—"सब गवर्नमेन्ट की बदमाशी है। दो बिल्लियों को न्यायोचित बंटवारे का लालच दे बीच ही में बंदर की तरह रोटियां हड़पना जो जानता है"।

"हो भी सकता है और न भी हो सकता है"—मैंने कहा। "अजी क्या बात करते हैं आप! ये बनिये हैं बनिये, दो को लड़ा अपना उल्लू सीधा करना जानते हैं। परन्तु अफसोस तो यह है कि हम यह सब जानते हुए भी अनजान बने हुए हैं। अक्ल से काम लेना तो हमें आता ही नहीं। अब देखना हजारों निर्दोषों का व्यर्थ ही रक्त बहेगा। भाई भाई का गला काटेगा।" वे बोले।

"जी! आप दुरुस्त फरमाते हैं। सचमुच हम लोगों की अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं। आपस में लड़ना जानते हैं, परन्तु बाहर वालों के सामने बिल्ली बन बैठते है"—मैंने जरा ताव में आकर कहा।

वे तैश में आ, बोले—"और फिर ये ना समझ मुल्ला-मौलवी और पंडित लोग भी तो उसे और गहरा रूप दे देते हैं। एक गला फाड़ कर चिल्लाता है कि "काफिरों को मारो" तो दूसरा अलापता है कि "गौ माता की रक्षा के लिये तैयार

हो जाओ" । इसीलिये तो हमारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है ।"

इसके बाद हमने जल्दी-जल्दी खाना खाया और डिब्बे में आकर बैठ गये । जिस जिसने भी दंगे की सुनी उस-उस पर आतंक छा गया । सबको अपनी-अपनी जान की पड़ी । सब अपनी- अपनी रोने लगे ।

एक ने पूछा—"क्यों भाई फलां जगह जाने में तो हर्ज नहीं ? दूसरा बोला—"क्यों साहब स्टेशन पर तलाशी लेंगे क्या ?" तीसरा घबरा कर कह रहा था—"मुझे भूलेश्वर जाना है-किधर से जाऊँ ?"

चौथा अपनी ही रो रहा था—"मुझे तो मुहम्मदअली रोड़ से सामान ख़रीदना था, वहां तो दंगाइयों का काफी जोर होगा । न जाने कितने दिन ठहरना पड़ेगा ।"

पांचवां पशोपेश में पड़ा था—"मेरे साथ तो बाल-बच्चे हैं जनाब, अच्छी जान पर आफ़त है ।"

सारे डिब्बे में इसी तरह की बातें हो रही थीं । मनोहर-लालजी सुन रहे थे और फिर मुझसे बोले—"रमेश बाबू ! देखा आपने सबको अपनी अपनी पड़ी है । और यह सब हुआ क्यों ? अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारने का फल है । मेरे परिचित

यदि मेरा बस चले तो मैं आज ही इन सब ढकोसलों को मिट्टी में मिला दूं। इंग्लैंड में धर्म के नाम पर खूब खून बहा है और ये बनिये भी यही चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में भी वहां की भांति खून की नदियां बह चलें। हम मूर्ख हैं, हुकूमत की कठपुतली हैं! क्योंकि हम गुलाम हैं।" कुछ देर इधर उधर की बातें होती रहीं। बातें सुनते-सुनते थका होने की वजह से मैं ऊंघने लगा। मैं सामान रखने की पटरी पर चढ़ गया और सोने ही लगा था कि मनोहर बाबू ने मुझसे किताब मांगी। मैंने उन्हें अटेची में से निकालने का कह दिया और लम्बी तान सो गया।

सुबह पांच बजे उठा तथा लोटे का पानी मुंह पर छींटा। छः बजे गाड़ी सेन्ट्रल स्टेशन पहुंची, सामान उतरवा कर मैं और मनोहर बाबू दोनों फाटक तक आये तथा बड़े ही दुख के साथ एक दूसरे से बिदा होने लगे। मनोहर बाबू ने मुझसे पता भी मांगा पर पता था ही कहां जो देता। खैर किस्मत के भरोसे मिलने का छोड़ हम एक दूसरे से बिदा हुए।

× × × ×

बम्बई में लगभग चार माह गुजर गये। इतने दिनों में मैंने बहुत कुछ देखा, ऊंची-ऊंची भव्य इमारतें और टूटे फूटे मजदूरों के झोंपड़े। अमीरों को अपने भव्य प्रसादों में सुरा और सुन्दरियों की रंगरेलियों में मस्त पाया और मनुष्य कहलाने वाले हजारों अस्थि कंकालों को लम्बी चौड़ी सड़कों के किनारे फूट पाथों पर खून के आंसु पीकर सोने के लिये भीख मांगते

हुए देखा। पेट की आग शांत करने के लिये अमीरों के पैसों पर अपनी इज्जत का व्यापार करने वाली एक दो नहीं लाखों वैश्या कहलाने वाली नारियों को देखा। देश और धर्म के नाम की मीठी छुरी से करोड़ों गरीबों के गले काटकर सोने चांदी से अपनी तिजोरियां भरने वाले पापी, पाखंडी किन्तु अज्ञानी और अन्धे समाज की निगाहों में धर्मात्मा और त्यागी कहलाने वाले नर-राक्षसों के भी दर्शन किये। मोटर, ट्राम, 'बस', 'विक्टोरिया' 'रेस्टोरेण्ट' 'थियेटर' सिनेमा, शराब घर, दूकानें और न जाने क्या क्या देखा। जिधर देखा उधर चांदी का चमकदार जूता गरीबों के सिर पर अभिशाप बनकर चक्कर काटता नजर आया। मानव; मानव का खून चूसकर अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये नये-नये साधनों का आविष्कार करने की धुन में मस्त दिखाई दिया। मेरे मन में बार-बार यही विचार उठ रहे थे, "क्या इसी को संसार कहते हैं? क्या यह वही विश्व है, जिसके पिता का नाम ईश्वर है? क्या यह वही दुनियां है जिसका कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद और न जाने कितने पवित्र मानवों ने स्वयं ईश्वर का प्रतिनिधित्व करके, एक नहीं अनेक बार संशोधन किया था?

इन्हीं विचारों में उलझते-सुलझते तक़दीर से कहिये, कुछ दिनों जूते घिसने के बाद एक फर्म में नौकरी भी मिल गई। पचास कमाता किन्तु पांच कौड़ी भी न बचा पाता। ग्यारह से पांच तक आफिस में जुतता इसके बाद टहलने निकल जाता।

उस रोज़ रविवार था, इसलिये जल्दी हेङ्गिंग गार्डन की ओर निकल पड़ा। वहां एक बेंच पर जो एकान्त में थी, जा बैठा और उस विशाल मुंबापुरी पर विचार करने लगा। एकाएक किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा। मैंने मुड़कर जो देखा तो "मनोहर बाबू!" बड़े प्रेम के साथ परस्पर मिलाप हुआ। कुछ इधर उधर की होने के बाद 'मनोहर बाबू' कुछ गम्भीर हो बोले—"रमेशजी! आपसे कुछ कहना चाहता हूं!" "कहिये" —मैंने उत्कंठा पूर्वक पूछा।

"क्या आपको अपने देश से प्रेम है"?

"अवश्य"

"कोरा प्रेम ही है या उसके लिये कुछ कुर्बानी भी करना जानते हो?"

"प्राणों से भी मूल्यवान अगर कोई वस्तु हो तो उसे भी चढ़ा सकता हूं।"

"तुमसे यही आशा थी"—मेरे कन्धों को थप थपाते हुए वे बोले।

—"मेरे साथ काम करोगे?"

"इससे अधिक खुशी की बात और क्या हो सकती है।"

—अपनी इच्छा प्रकट करते हुए मैंने पूछा—

"क्या करना होगा?"

"समय सब कुछ बता देगा। बोलो कहां रहते हो?"

मैंने अपना पता बताया। अपनी डायरी निकाल उन्होंने मेरा पता लिख लिया और बोले---" अच्छा आज रात्रि को साढ़े ग्यारह बजे।"

" अच्छा "---हाथ मिलाते हुए मैंने कहा।

वे हवा की तरह चलते बने। कुछ देर बाद मैं भी उत्सुकता लिये, आसमान पर कदम रखता हुआ अपने घर को रवाना हुआ। आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो मैं बिस्तर पर लेट गया। अपने पिछले दिनों की याद ने मुझे बेचैन कर दिया पींजरे में बंद पक्षी की तरह मेरे दिल में रह रह कर टीस सी उठने लगी। माताजी-पिताजी का स्मरण हुआ, कॉलेज के सहपाठियों की याद तथा जेल-जीवन की स्मृतियां सजग हो उठीं। एक व्यक्ति और आया, जिसे मैं कभी न भूल सकूंगा और वह थी---" कांता "

जब हम दिल्ली रहते थे, तब वह हमारे घर के पड़ोस में रहती थी। हमारी ही जाति की थी उसमें और मुझमें काफ़ी प्रेम भी हो चुका था। हमारे प्रेम को देख, घरवालों ने सगाई भी कर दी थी। परन्तु राष्ट्रीय कामों में भाग लेने की वजह से मुझे दो साल की सज़ा हो गई। कांता के पिता साम्राज्य के वफ़ादार थे। भला वे क्यों चाहने लगे कि उनका जमाता "बागी" हो! उन्होंने कांता की शादी जब मैं जेल में था, दूसरे से कर दी। कांता बहुत रोई छटपटाई किन्तु धर्मात्मा (?) बाप ने एक

न सुनी। जेल में मैंने भी सुना और कलेजा थाम कर रह गया। मेरे दर्द को ईंट चूने से बनी उस अचेतन कठोर कोठरी ने देखा था और सहृदय बन सचेतन की तरह सोखा था बरसाती नदी की भांति उमड़ने वाले मेरे आंसुओं को। मैं कहां तक रंज करता। उफन कर ढुलने वाले दूध पर रोने से काम ही क्या ? केवल उसी की स्मृतियां बटोर कर अपने उसी निश्चित ध्येय की ओर, जिसके कारण मैंने अपनी कांता को खोया था, सारे रंजो-गम को गोली मार, जी-जान से बढ़ चला। दूसरी बार पांच साल की हवा खाई, और आज पुनः उसी कार्य की ओर............।

किसी ने द्वार खटखटाया। मैंने चट उठकर द्वार खोला। "मनोहर बाबू" थे। उनके हाथों में एक छोटी-सी पेटी थी। मैंने उन्हें वहीं खड़ा देखकर कहा—

"आइये न !"

"नहीं"—मुझे पेटी थमाते हुए वे बोले—"पुलिस मेरा पीछा कर रही है। तुम्हारे यहां 'बम' का सामान लिये चला आ रहा था कि पुलिस................।"

"अच्छा खुश रहो अहले वतन, हम तो सफ़र करते हैं।"

—और वे चटपट नदारत हो गये।

मैं पशोपेश में फंस गया, परन्तु फिर तुरन्त दरवाज़ा बन्द कर मैंने पेटी छिपा दी, और चुपचाप लेट गया। दिल धड़क

रहा था, काम हाथ में लेते तो देर न हुई कि आफ़त सर पर आ टपकी। न जाने कब मैं सो गया और सुबह तब नींद खुला जब कोई दरवाज़ा खटखटा रहा था।

अलसाई आंखों से उठा और दरवाजा खोला। देखा तो पुलिस। नींद कहीं गायब हो गई, मैं भौंचक्का सा रह गया और लगा बगलें झांकने, एक ने आगे बढ़कर मेरे हाथों में हथकड़ी डाल दी और दो तीन कमरे में घुस कर इधर की वस्तु उधर करने लगे और अन्त में वह छोटी पेटी उठा ही लाये। मेरे दिल में शंका हुई—शायद मनोहर बाबू भी पकड़ा गये और कदाचित रात को उन्हें यहां देख लिया होगा। ख़ैर मोटर में बैठ, मुझे अपनी चिरपरिचित ससुराल के लिये प्रस्थान करना पड़ा।

दोपहर को मनोहर बाबू आये, मैंने बड़े आश्चर्य से देखा कि सिपाही उन्हें सलाम ठोंक रहे थे और स्वयं एस. पी. उनकी पीठ थपथपा रहे थे। मुझे समझते देर न लगी कि मनोहर बाबू देश भक्त नहीं किन्तु देश-भक्त के चोले में छिपे राजभक्त हैं। अब जाकर कहीं मेरी समझ में आया, उनकी आंखों की चमक का अर्थ और प्रसन्नता छिपाकर आश्चर्य प्रगट करने का मतलब।

वे ताला खुलवा कर अन्दर आये और बोले "मजे में तो हैं रमेश बाबू"?

" जी आपकी कृपा से "—घृणा पूर्वक मैंने उत्तर दिया।

" मेरे दोस्त यह सब परतंत्रता का अभिशाप है।"

" खैर, परन्तु मैं कुछ पूछना चाहता हूं।"

" पूछिये "

" आप मेरे जैसे............?

" जी! इक्कीस बार जयचन्द का पार्ट अदा कर चुका हूं।"

" क्यों? किस लिये" ?

" पापी पेट के लिये "

" क्या तुम्हारे हृदय में ज़रा भी देश प्रेम नहीं ? "

" है ज़रूर, लेकिन मैं ऐसा देश भक्त नहीं बनना चाहता कि खुद तो तबाह होऊँ साथ ही दाने-दाने के लिये बीबी-बच्चों को बिलखता देखूं। मित्र ! अकेले फक्कड़ का देश-भक्त बनना सहज है—परिवार वालों का नहीं।"

" अच्छा, मुझे कितनी सज़ा होगी ? "

" यही लग भग—चार छह साल की।"

" निर्दोष होते हुए भी...............?"

" निर्दोष नहीं हो दोस्त ! मुस्कुराते हुए वे बोले।

" यहां इम्पीरियल बैंक के बारे में जानकारी प्राप्त करने आये थे न" ?

" तुम्हें कैसे पता चला ? " आश्चर्य पूर्वक मैंने पूछा ।

" तुम्हारी अटेची ने सब कुछ कह दिया । "

मैं चुप हो गया । कितना मूर्ख हूं मैं—पार्टी का वह पत्र अटेची में ही रख छोड़ा था और वह भी लापरवाह की तरह । " अच्छा उस्ताद चलें, पर हां अपने सफर के साथी की एक बात गांठ बांध लो—" किसी का एकदम विश्वास कर बैठना अपने आपके साथ विश्वासघात करना है " इतना कह, मेरा हाथ थपथपाता हुआ चला गया मेरा सफर का साथी ।

क्रांति की प्रथम भेंट

रचयिता—रामप्रकाश मल्होत्रा

[१]

जरा लापरवाही से टहलते-टहलते नलिन हंस पड़ा। न जाने क्या सोच रहा था वह। "देखती हो न मार्गरेट! कैसा सुहावना समय है, चांदनी रात्रि और मन्द-मन्द वायु, जी चाहता है बस................"।

नलिन की बात पर उसे जबरदस्ती हँसी आ रही थी। "तुम्हारी हर बात निराली होती है" मिस मार्गरेट ने आंखें नचाते हुए कहा।

नलिन ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। बस देखता रहा उस स्थिर सौंदर्य को। गोल-गोल चांद के समान मुख, बड़ी-बड़ी नीली आंखें, सुनहरी बाल। कैसा विकसित सौन्दर्य है। ऐसा लगता है जैसे शरद का पूर्ण चन्द्र नीलाकाश छोड़ पृथ्वी पर उतर आया हो।

व्यंग्य के लहजे में मार्गरेट ने पूछा—"क्या देख रहे हो?" नलिन का स्वप्न टूटा। उसने अपनी गलती महसूस की, शरमा कर अपनी आंखें नीची करलीं।

अब रात्रि अधिक हो गई थी। नीले स्वच्छ आकाश में

तारे टिमटिमा रहे थे। सन्नाटा बढ़ता जा रहा था, चन्द्रमा बादलों की ओट में छिप चला था। सहसा निस्तब्धता भंग करते हुए नलिन ने कहा—"अब इजाजत दो मिस मार्ग....।" और वह एकदम साइकिल पर बैठकर चल दिया उस काली रात में।

[२]

सवेरे जब गिलाफ से मुंह बाहर निकाला तो धूप सिर पर चढ़ आई थी। अरुणदेव अपने प्रखर प्रकाश से जगत को प्रकाशमय बना रहे थे। नलिन ने मुड़कर घड़ी की ओर दृष्टि फेरी "सवा नौ बजा था।" वह छटपटा कर उठ बैठा, एक सिगरेट जलाई और उसका कश खींचता हुआ इधर उधर बरामदे में टहलने लगा। नलिन देख रहा था कि सिगरेट के धुएं में उसकी चिन्ताएं, समस्त वेदनाएं दुख और दर्द दूर भाग रहे हैं। कैसा सुखमय उसका जीवन है। बन्धन नहीं, रुकावट नहीं और न कोई सौदा ही। स्वतंत्रता मिली है, मुहब्बत के दरिया में आजादी से तैरते रहना बस ऐसी ही जिन्दगी में सुख है।

शाम की इन्तज़ार में नलिन छटपटा रहा था। शाम होते ही वह अपनी साइकिल उठा मिस मार्गरेट के बंगले पर जायगा। कैसी प्रेममयी है वह।

संध्या आई। नलिन ने अपनी साइकिल उठाई और बड़ी तेज़ रफ्तार से चल दिया मिस मार्गरेट के बंगले की ओर। वह

बिना तकल्लुफ के मिस मार्गरेट के ड्राइंग रूम के दरवाजों पर आ उपस्थित हुआ।

मिस मार्गरेट अभी अपने "ड्राइंग रूम" में शृंगार कर रही थी। नलिन के पैरों की आहट सुनते ही वह मुड़ी, आंखों को बल देते हुए धीरे-धीरे मुस्कराती हुई बोली "आओ मिस्टर नलिन मैं तुम्हारा ही इन्तजार कर रही थी। ठीक समय पर आये हो "पिक्चर देखने चलोगे न ?" हॉली वुड का "स्विम मिस" चल रहा है।"

बदले में नलिन केवल मुस्करा दिया, अर्थात् वह उसके प्रस्ताव से सहमत है। मिस मार्गरेट ने आलमारी में से एक लाल बोतल निकाली। थोड़ी-थोड़ी दो गिलासों में कुछ उंडेली, फिर एक ग्लास तो स्वयंने उठा लिया और दूसरे के लिये नलिन को आंखों से संकेत किया। बिना किसी हिचकिचाहट के नलिन ने वह ग्लास उठाकर मुंह से लगा लिया। मार्गरेट ने ड्राइवर को "कार" निकालने का हुक्म दिया और वे दोनों "कार" में बैठकर चल दिये मिनर्वा टॉकीज की तरफ।

[३]

"मैटनी शो" देखकर करीब आठ बजे नलिन और मिस मार्गरेट घर लौटे। नलिन ने कहा "अच्छा अब मैं जाता हूं।" मिस मार्गरेट ने कटाक्ष करते हुए उत्तर दिया—"क्यों

मैं क्या इतनी बुरी लगती हूं ? बस, आगे नहीं और चल दिये। थोड़ी "विस्की" और नहीं पियोगे ? देखो मैंने यह तुम्हारे खातिर ही पेरिस से मंगवाई है। इसका "टेस्ट" कितना "डेलीकेट" है।

मुस्कराते हुए नलिन ने कहा—"थैंक्स"—और तुरन्त एक ग्लास उठाकर मुंह से लगा लिया। फिर नलिन की साइकिल लाहौर की सुनसान माल रोड पर तेज रफ्तार से चल दी। उसने अपनी साइकिल "लारेन्स-गार्डन" के फाटक की ओर मोड़ी ही थी कि उसकी दृष्टि अचानक एक सुन्दर युवती पर पड़ी। फिर क्या था, नलिन तुरन्त साइकिल से उतर पड़ा और चल दिया उसके पीछे-पीछे।

नलिन ऐसे व्यक्तियों में से है जो सौंदर्य की क़द्र करते हैं। रंगीन तितलियों के पीछे-पीछे फिरने में वह सारा दिन बिगाड़ सकता है। सौन्दर्य देखने के लिये है ऐसा सौभाग्य बार-बार तो देखने को मिलता ही नहीं, फिर क्यों न वह इस मौके से फायदा उठावे ? नलिन ने देखा वह युवती समीप ही की एक बेंच पर बैठ गई है। वह भी उसके सामने वाली बेंच पर बैठ गया और कनखियों से देखता रहा उसकी ओर। उसने देखा युवती एक पुस्तक पढ़ने में तन्मय है।

नलिन उसके सौन्दर्य का मूल्य आंकने लगा, कितना भोला सौन्दर्य है और कितनी सादगी है इस युवती में। काली

खादी की साड़ी इसके चिट्टे गौर-वर्ण पर कैसी सुन्दर फबती है। इस अपरिचिता के समक्ष उसे मिस मार्गरेट का सौन्दर्य फीका प्रतीत होने लगा। उसमें बनावटीपन की बू थी। उसका सौन्दर्य लेवेण्डर, क्रीम और पाउडर आदि पर अवलंबित है। उसमें तेज और मादकता नहीं है, आंखों में मस्ती और जवानी में चंचलता नहीं है, मुंह पर दर्द और वेदना नहीं है और न चाल में थिरकन ही है, जो कि इस युवती के सौन्दर्य में स्पष्ट झलक रहे हैं।

भावों ने पलटा खाया। किन्तु इसका जीवन व्यर्थ है यह यौवन के अर्थ को नहीं जानती, ज़िन्दगी के लुत्फ से अपरिचित है। यौवन के हृदय में व्यथा कैसी? सौन्दर्य के चित्त में चिन्ता कैसी? इस उन्मत्त सौन्दर्य पर क्या यह सादगी शोभा देती है? नलिन हंस दिया जोर से, पागल के समान। हंसी में उस युवती की सादगी की उपेक्षा थी। वह गुनगुनाने लगा——

" बिरहा की आग जलाये मोरे मन को "।

गीत ने युवती का ध्यान उसकी ओर आकर्षित कर लिया। युवती ने चांदनी के प्रकाश में देखा एक युवक उसकी ओर प्यासी निगाहों से देख रहा है। कितना हृष्ट-पुष्ट तरुण है। लाल कमल जैसी बड़ी-बड़ी आंखें और प्रशस्त ललाट। किसी भावी कल्याण कामना से युवती का हृदय नाच उठा।

युवती उठी और नलिन के नज़दीक आ मुस्करा कर

बोली—"क्या देख रहे थे ?" किसी भावी शंका से नलिन का शरीर कांप उठा; फिर भी बिना किसी झिझक के उसने कह दिया—"ईश्वर के उद्यान का एक नव विकसित पुष्प"।

"खूब"! अपरिचिता कह चली—"आप क्या करते हैं ?,, यह दूसरा प्रश्न था।

"प्रेम" अल्हड़ता से नलिन ने उत्तर दिया।

युवती—"किसमें ?"

नलिन—"सौन्दर्य में"।

युवती—"देश में नहीं ?"

नलिन ने सिर नीचा कर लिया; उसके पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं था। उसे अपने आपसे ग्लानि होने लगी। उसके हृदय ने प्रश्न किया—"क्या उसका देश के प्रति कुछ कर्तव्य नहीं है ? क्या उसे अपनी मातृभूमि की गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये ?" उसने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया—"वह अपने देश को अवश्य ही बन्धन मुक्त करने में अपनी संपूर्ण शक्ति लगा देगा"।

[४]

युवती उसके मन का भाव तुरन्त ताड़ गई। उसने कहना आरम्भ किया—"क्या जलियान वाला बाग में हुए भयंकर

नर-हत्याकांड को सुनकर भी तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता ? जहां एक नहीं दो नहीं हज़ारों माताएं निपूती हो गईं। एक नहीं दो नहीं हज़ारों भारतीय नारियों की मांग का सिंदूर जालिम " डायर " के खूनी हाथों से सदा के लिये पोंछ डाला गया। हज़ारों बहिनों के फूल जैसे नौजवान भाइयों के खून से रंगी हुई जिस ज़मीन का चप्पा चप्पा आज हिन्दुस्तानी नौ जवानों को ज़िन्दादिल शहीदों की पवित्र कुरबानियों का संदेश सुना रहा है। क्या तुम्हारी सौन्दर्य से प्रेम करने वाली आत्मा पिस्तौल के बल पर गुलाम बनाकर जानवरों से भी बदतर जिन्दगी बिताने पर मजबूर करने वालों के विरुद्ध विद्रोह करने का आमंत्रण नहीं देती ? क्या, साम्राज्यवादी तख्त के फौलादी प्रतिनिधियों को अन्याय का जबाब ' बम ' से देने वाले सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आदि वीर शहीदों की हंसते-हंसते मातृ-चरणों में अपने मस्तक का दान कर देने वाली कहानी तुम्हारी 'धमनियों' में उत्साह, वीरता, त्याग, और मानवता का संस्थापन करने के लिये प्रेरणा नहीं देती ? मातृभूमि अपनी गुलामी की जंजीरों को तड़ातड़ तोड़ देने के लिये तरुणों का आह्वान कर रही है। क्या तुम उसके स्वर को सुन सकते हो तरुण ! क्या अपने दिल के कोने में छिपी हुई अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करने वाली महाशक्ति की उपासना करके अपना कर्त्तव्य पालन कर सकते हो ?"

नलिन ने मुंह उठा कर देखा युवती की आंखें तेज के मखर प्रकाश से जगमगा रही थीं। चेहरे पर एक गजब की

देवी रौनक खेल रही थी। मन में अदम्य उत्साह और चित्त में देश प्रेम की सुदृढ़ भावनाएं चक्कर लगा रही थीं। नलिन ने श्रद्धापूर्वक फिर मस्तक झुका लिया। उसके अन्तर के मानव और शैतान में युद्ध चल रहा था। युवती की अंगारमयी वाणी का उसके हृदय पर जादू जैसा असर हो रहा था। युवती धारा प्रवाह में बोलती जा रही थी। अचानक कंगाल हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ हड्डियों के ढाचों की तड़पन से भरी हुई दिल को हिला देने वाली कहानी सुनते-सुनते नलिन की आंखों में पानी भर आया। वह अपने होश और जोश को संभालते हुए एकदम बोल उठा—"बहिन ! मुझे क्षमा करो, सचमुच तुम देवी हो। तुमने मेरे—एक पराधीन देश के नौजवान के भटकते हुए—भूलते हुए—पतन की उपासना करते हुए हृदय को संभाल लिया। बहिन ! विश्वास करो मैं आज से आपके साथ हूं। सृष्टि के आदि से आज तक उसका इतिहास जानने वाले शीतल रजनी पति शशि को साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करता हूं कि जन्म पर्यंत देश सेवा से मुख नहीं मोड़ूंगा। आज से मैं अपना जीवन स्वाधीनता प्राप्ति के लिये किये जाने वाले अपने कठोर कर्तव्य को सौंपता हूँ। बहिन मुझे आज्ञा दो ! आशीर्वाद दो !! "

आज से नलिन " विद्रोही सेना " का सैनिक बन गया। रात्रि अधिक हो चली थी। आकाश से नन्हीं-नन्हीं बूंदें गिरने लगीं। नलिन को लगा जैसे मां का दर्द आंसु बनकर चू रहा है, वह स्वाधीनता प्राप्ति के लिये की जाने वाली कुरबानियों से

ही मिट सकता है। ....रात भर वह जागता रहा आशा और उमंग से उसे नींद नहीं आई।

[९]

प्रभात आया। नलिन के जीवन का कर्तव्यमय प्रभात था यह। हरी-हरी दूब, फूल और पत्ते विद्रोही सैनिक नलिन का शबनम से स्वागत कर रहे थे। प्राची के क्षितिज से अपना रक्तिम किरण-हार लिये सूर्य भी अपने सारथी अरुण के साथ बड़े वेग से मातृभूमि को स्वाधीन करने की प्रतिज्ञा करने वाले नलिन को बधाइयां देने के लिये द्रुत गति से दौड़ा चला आ रहा था धीरे धीरे सारा नीलाकाश खूनी रंग में स्नान कर सोना बरसाने लगा। शीतल समीर ने अमृत बरसा कर और पक्षियों ने क्रांतिकारी नलिन का क्रांति-गीत गा कर स्वागत किया।

नलिन सिगरेट की एक लम्बी कश खींचता और धुएं के बादल में न जाने कौनसा भविष्य का रहस्य खोजता हुआ कमरे में इधर उधर टहल रहा था। अचानक न जाने कौनसी भावो विचार धारा से उसका रोम रोम कांप उठा। वह रात्रि की प्रतीक्षा कर रहा था।

आखिर संध्या होते ही वह अपनी साइकिल उठा मिस मार्गरेट के बंगले की ओर चल दिया। उसके हृदय-समुद्र में विचारों के तूफान आते और नष्ट हो जाते। " आज त्याग का

अवसर है। हृदय पर पत्थर रखकर सब कुछ सहना होगा। देश सेवा के इस पवित्र अनुष्ठान की सफलता तभी संभव है।"

साइकिल रख वह मिस मार्गरेट के कमरे के सम्मुख पहुंच गया। मिस मार्गरेट ने धीरे-धीरे अपनी उसी पुरानी मुसकुराहट के साथ स्वागत के शब्दों में कहा—"आओ" नलिन मौन और गम्भीर था। एक बारगी उसका समूचा शरीर थरथरा उठा, क्रोध से उसकी आंखों में खून उतर रहा था।

"क्या आज घर से ही "विस्की" पी आये हो "डियर?" मिस मार्गरेट ने कहा।"

जेब मे छः नला पिस्तौल निकाल कर कांपते हाथों से उसकी लपलपी दबाते हुए नलिन ने कहा "हां, अब यह नशा कभी नहीं उतर सकता "डार्लिंग!" और दनादनाती गोली मिस मार्गरेट के सीने में लगी। उसके प्राणों का पंछी किसी अज्ञात देश की ओर अपने पर फड़फड़ा कर उड़ गया और वह विप्लवी रात्रि के गहन अन्धकार में न जाने कहां गायब हो गया।

[६]

दूसरे दिन प्रातःकाल बड़े बड़े अक्षरों में स्थानीय अखबारों में खबर छपी—"खून! हत्या!! खून!!!"

हमारे प्रान्त के गुप्त-विभागकी अधिकारिणी मिस मार्गरेटका उनके बंगले पर गत रात्रि को किसी दुष्ट ने "खून कर दिया।

पुलिस अपराधी की खोज कर रही है।" —"मिस मार्गरेट ने सरकार की तन मन से सेवा की थी। उसने एक वर्ष के भीतर ही विप्लवियों का दमन कर दिया था। कई क्रांतिकारी नेताओं को गिरफ्तार कर फांसी पर चढ़वा दिया था।"

देश के तमाम बड़े बड़े नेताओंने देश को बतलाया कि इस प्रकार हिंसात्मक और आतंकवादी तरीके से हमारा देश स्वतंत्र नहीं हो सकता। यह मार्ग सर्वथा ग़लत है।"

मिस मार्गरेट की लाश पर पिन से खोंसा हुआ एक काग़ज़ भी प्राप्त हुआ जिस पर लिखा था——

"क्रांति की प्रथम भेंट"!

२३ मार्च १९४३]

अहमदिया मंदिर
और
मोहनिया मसजिद

[रचयिता—स्वरूप कुमार गांगेय]

उस दिन मैं अकेला बहुत दूर घूमने निकल गया। चांदनी रात में दो तीन धुले हुये मैदानों को पार करने के बाद मुतिया नाले के किनारे बड़े से पत्थर पर मंत्र-साधक की तरह जाकर बैठ गया।

नाले के उस पार-कगाड़ों के ऊपर-ऊंचाई पर बुनकरों की बस्ती के धुंधले दिये झपझपा रहे थे। नाले की ध्वनि और दूर बस्ती की गम्भीर शान्ति प्रकृति की ये दोनों व्यवस्थायें विवेक की कसौटी पर अपने-अपने व्यापारों के आवरण में ठीक उल्टा अर्थ दे रही थीं। नाले की सतत ध्वनि जिसे जग असंख्य प्राणियों का पीड़ा-गीत कह उठता वास्तवमें वह उस अर्थ की द्योतक नहीं थी। वह तो अनन्त सुखों की सम्मिलित ध्वनि थी जो युगों से लगातार मधुर संगीत प्रसारित करती चली आरही थी; और सुदूर में वह बस्ती, जिसके सिर पर एक गम्भीर शान्ति विराज रही थी, और जग जहां सुखी जीवन की कल्पना कर उठता था, वहां भी वास्तव में वैसी बात नहीं थी। उस घोर शान्ति से पीड़ित-मानव के लय-हीन कर्कश स्वर उठ रहे

थे। थके, मांदे, भूखे और प्यासे, सोये हुये बुनकरों के प्राण अपने मर्मों को छुपाये हुये दूर शहरातियों में हवा के झोंकों से शान्ति के संदेशे भेज रहे थे।

ऐसी रात में मेरा जब सारा मन उस नीरवता में मंडराने लगा, तो मुझे ऐसा लगा जैसे असंख्य प्राणी भयंकर पीड़ा से बिलबिला रहे हैं और उन सोये हुये प्राणों से एक ऐसा भयंकर गर्जन उठ रहा है जैसे सैकड़ों समुद्र अपनी अपनी सीमाओं को लांघकर दौड़ पड़े हों।

एक ओर स्वर-साधक की उंगली से धीरे-धीरे सारे संसार के बटोरे हुये राग-रंग मधुरता लिये हुये झर रहे थे और दूसरी तरफ घोर शान्ति से कराहते हुये प्राण और उस पर किलकारती हुई मृत्यु का भयंकर ताण्डव नृत्य हो रहा था।

इन गहरे विचारों से समझौता करके जब मैं अपने आप में लौटा तब दूर बुनकरों की बस्ती में वैसे ही कुछ धुंधले दीये अब भी टिमटिमा रहे थे और पत्थर के नीचे मेरे कदमों में नाले की वही ध्वनि दुल्हिनसी सजी सजायी अब भी चली जा रही थी।

शुभ्र-वसना नारी की तरह चांदनी रात चारों ओर जाग रही थी और जब मैंने अपनी आंखें चारों तरफ दौड़ाई तो बस्ती की उस टूटी-फूटी पुरानी मस्जिद की मीनार पर दृष्टि ठिठक गई। घोर निद्रा में तल्लीन एक अतीत हड़बड़ा कर उठ बैठा

और दूसरे ही क्षण एक युग से चादर तान कर सोई हुयी कहानी आंखें मलकर अंगड़ाई लेने लगी।

अहमद और मोहन दोनों बुनकरों का जीवन नाले की ध्वनि की तरह कई वर्षों तक साथ-साथ बहता रहा था। दोनों अपढ़ परिवारों ने खुदा के बन्दों की और ईश्वर के अनन्य भक्तों की सीमाओं में मुसलमानियत और हिन्दुत्व को इतना ऐक-मेक कर दिया था कि सैकड़ों-हजारों देवता और राक्षस भी उस महा-समुद्र में विष और अमृत को अलग अलग नहीं कर सकते थे।

दिन डूबते-डूबते कमाई का मोह त्याग कर अहमद शाम की नमाज के लिये दौड़ जाता और मोहन मन्दिर की ओर झपट पड़ता। फिर बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ, दोनों एक जगह आ मिलते और अपनी सारी व्यवस्थाओं और अव्यवस्थाओं को खुलकर सम्हाल और सुलझा लेते थे। ऐसा लगता मानों खुदा और ईश्वर के उपासक अपनी अपनी गठरियों का आदान प्रदान कर लेते हों।

बस्ती में अहमद एक अनुभवी हकीम भी समझा जाता था। निराश रोगियों को अहमद का सहारा था। बड़े-बूढ़ भी आश्चर्यान्वित हो उठते थे, जबकि डूबते हुए प्राणों को अहमद खींच लाता और फिर से रोगी नव-जीवन में फूल की तरह तैरने लग जाता था।

एक बात तो आज मेरे हृदय में भी पत्थर पर खींची हुई लकीर की तरह अङ्कित है। उस दिन संध्या के अवसान के बाद से ही आकाश में बादल घुमड़ आये और आधी रात होते न होते घनघोर वर्षा होने लगी मोहन के घरका छाजन टपक रहा था और उसकी बूढ़ी मां, एक कोने में, पूर बरसाती नदी की तरह तेज बुखार में कराह रही थी। टिमटिमाती हुई जिंदगी की तरह झपझपाता हुआ दीपक मृत्यु-पथ का रास्ता दिखाने के लिये, बाहर घोर अन्धकार से क्षण-क्षण में बिजलियों का इशारा पाकर भी जीवित था। पेवन्द लगी हुई मैलीसी मलदार में अहमद की मुसलमानियत भी हिन्दू-नारी के कदमों में बैठकर आंसू बहा रही थी। मोहन के चेहरे पर गम्भीरता थी। लगता था उसके पास अतुल साहस का भण्डार है। और सैकड़ों संघर्षों को चुनौती देकर आंधी और तूफान में भी वह महामानव की तरह आगे बढ़ सकता है। ठण्डे पड़े हुये हुक्के को वह फिर गुड़गुड़ाने लगा। बाहर पानी कुछ कम हुआ। बुढ़िया ने थमी हुई आंखें झपझपायीं और बोली, "एक बार मन्दर में भगवान को देख लेती तो................"

मोहन कुछ मुस्कराया और फिर तेज़ी से हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। ऐसी तूफानी रात में मां को मन्दिर तक ले जाना भी सम्भव नहीं था बाहर दरवाजे पर किसी के पद-चाप सुनाई पड़े। अहमद का एक पड़ोसी छाता लेकर खड़ा था। वह बोला, "चाचा! ज़रीना का बुखार और भी तेज़ हो गया है,

उसकी आंखें उसके वालिद को ढूंढ रही हैं, चलो न ?" वातावरण और भी गम्भीर हो उठा और ऐसा लगने लगा मानों आज मृत्यु देवी की शादी है ; मोहन अहमद का हाथ पकड़ कर उठ पड़ा। किन्तु अहमद चिल्लाकर बोल उठा, "पगले ! मां को गोपाल-मन्दिर तक ले जाने की बात भूल गया ?" मोहन उद्विग्न हो उठा, बोला, "नहीं-नहीं, मां तो खुद ही खुदा के कदमों में जा रही है—हम सबको छोड़कर; उठो मेरी बेटी ज़रीना को सुधलो।" अहमद बच्चे की तरह रो पड़ा और अपना माथा मां के ठण्डे पावों में रखकर बोला, "अम्मा ! मेरी ज़रीना को मेरे नज़दीक ही रहने दो !" बाहर छोटी-छोटी बूंदें अब भी बरस रही थीं। आधी रात का सन्नाटा सारी बस्ती में जाग रहा था। अहमद और मृत मां को वैसे ही छोड़कर मोहन झपटता हुआ अहमद के घर पहुंचा। ज़रीना तेज़ बुखार में तड़फ रही थी। मैली रेशमी सलवार और मैलीसी मलमली कुरती में अहमद की बेटी धीरे धीरे बुझ रही थी। मोहन ने बुखार में लथ-पथ ज़रीना को अपनी छाती से लगा लिया। उसकी दोनों आंखों से अविरल अश्रुधारायें बह निकलीं। १२ वर्ष की ज़रीना ने फिर एकबार भी आंखें नहीं खोलीं।

× × × ×

इसके बाद—

एक दिन इसी मस्जिद की तरफ मोहन विक्षिप्तसा लड़खड़ाते पांवों से चला जा रहा था। सन्ध्या दिशाओं में धीरे-धीरे

सो रही थी। उसने मस्जिद में प्रवेश किया और दोनों घुटने टेक कर अपना माथा मज़ार पर धर दिया। ऐसी ही चांदनी रात जब चारों तरफ बिखर रही थी उसे किसी ने उठाया देखा, अहमद अपने हाथों में मन्दिर के देवता पर चढ़ाये हुये फूल लेकर खड़ा है। उसने मुस्कराते हुये सरल बोलों में कहा, "पगले! यह मन्दिर नहीं है यह तो मस्जिद है।" मोहन की आंखें छलछला आयीं वह बोला, "अहमद! इन दीवारों के कण-कण से मधुर घंटियों की आवाज़ और शंख-नाद सुनायी पड़ रहा है।" अहमद ने झपट कर मोहन को छाती से लगा लिया और आंखों में आंसू भरकर वे पूजा के फूल मज़ार पर बिखरा दिये।

रात घनी हो आयी थी। मैंने अपने सारे सपने समेट लिये। कराड़ों पर बस्ती के दीये प्रायः बुझ चुके थे। केवल मीनार अकेली द्वन्द्व-हीन खड़ी थी। मैं शहर लौट पड़ा।

२८ जून १९४३]

वह क्रांतिकारी था।

[रचयिता—" श्री हरि "]

मुझे पुलिस के खुफ़िया विभाग में काम करते कई साल हो गये थे। अब मैं किसी गम्भीर से गम्भीर मामले का पता बड़ी सुगमता पूर्वक लगा लेता था। मैं साधारण वेश में रहता था, और करीब करीब भारत की सभी भाषाएं बहुत सफलता पूर्वक बोल लेता था। तैरना, कूदना, दौड़ना, मोटर चलाना आदि कलाओं से जो आवश्यक अवसरों पर बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं, मैं भली भांति परिचित था। मेरा समय अधिकतर ट्रेन में तथा बड़े-बड़े शहरों में चक्कर लगाने में ही बीतता था। मैं बाम्बे शहर के 'स्टेशन से उतर कर पैदल ही चला जा रहा था। बडा रश था, धूप कड़ी थी। गर्मी के कारण शरीर पसीने से तर हो चला था। प्यास के मारे जान निकल रही थी। जल्द पानी पीने का विचार करते हुए तेजी से बढ़ रहा था, कि अचानक मेरी दृष्टि उस भिखारी पर पडी। बाल बढ़े, दुबला पतला ' आंखें चमकीली, पुतलियां चढ़ी हुई, फटे चिथड़े लपेटे वह जा रहा था। उसे देखते ही मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने उसे कहीं देखा हो। वह भी उसी ओर चल रहा था जिधर मैं। कुछ आगे बढ़कर पूछा—

" अरे भिखारी तू यहां कैसे? तू तो जबलपुर में था न? राबर्टसन कॉलेज के पीछे तालाब के किनारे मैंने तुझे या तेरे ही जैसे, एक आदमी को देखा था। "

"हूँ हूँ न बाबू; मैं नहीं, कोई दूसरा रहा होगा ?" वह गौर से मुझे देखने लगा। उसकी भाव भंगिमा से तो यह समझना कठिन था कि जबलपुर में वही था या दूसरा ? किन्तु उसकी दाहिनी भौंह के ऊपर के दाग से मुझे पूर्ण निश्चय हो गया कि यह वही था। अब मेरा सन्देह और भी अधिक हो गया और उसने भी किसी तरह मुझसे पीछा छुड़ाने की कोशिश की। वह तेजी से चलने लगा। मैंने कहा—"तो क्या तू यहीं का रहने वाला है ?" मैं उसके शरीर को गौर से देखने लगा।

"हां बाबूजी [यहीं रहते बीसों साल हो गये। दो एक रोटी मिल जाती है खा कर पड़ा रहता हूं।" वह कुछ सजग सा दीखने लगा। मैंने बातचीत का क्रम जारी रखने के ख्याल से पूछा:—"क्या तू भूखा है ? खाना खायगा ?" भूख तो नहीं है बाबूजी ! हां एकाध पैसा दे दीजिये।" "पैसे क्या करेगा ?"

"पैसे ? क्या करूँगा ? इसी के पीछे तो लोग भाई तक का खून करते हैं। बेइमानी करते हैं। देश-धरम तक का खयाल नहीं रखते। उनकी जिन्दगी कुत्तों की जिन्दगी से भी बुरी है।"

"किनकी जिन्दगी ?"

"लोगों की।"

"किन लोगों की ?"

" मैं क्या बताऊँ ? आप लिखे पढ़े हो; खुद ही सोच सकते हो बाबू। मैं बेअक्लि क्या समझा सकता हूँ आपको ! " मैंने कल्पना भी न की थी कि इस पोजीशन में—भिखारी की हालत में वह बारीक जूते लगाएगा।

" तो तुझे पैसे ज्यादा प्यारे हैं ? "

" हां। "

" जान से भी ? "

हां, पैसे ही से न पेट भरता है !........पहले आत्मा तब परमात्मा, फिर इसी से देश के गरीबन की भलाई भी तो होती है। इसी के लिये लोग माथा पच्ची करते, हैरानी सहते अपनी जान खतरे में डालते और कड़ी धूप गर्मी सहते हैं न ! बहुत से लोग मां बहनों की इज्जत लुटते देखते हैं कुछ नहीं बोलते बाबूजी। "

" तुम ऐसे लोगों से नफरत करते हो ? "

" उनसे अच्छे तो हम लोग हैं कि भीख पर गुजर करते है, उतना भारी पाप तो नहीं करते। ऐसे लोगों पर तो थूकने कोमी भी नहीं चाहता ! "

यह दूसरा जूता था जिसके घाव अन्तस्थल के गहरे भाग पर पड़े।

बातें करते करते हम दोनों दूर निकल गये। अब वह अद्विग्रपा नहीं दीख रहा था, लेकिन वह अच्छी तरह समझ गया कि मैं खुफ़िया हूं। क्योंकि वह जबलपुर में भिखारी नहीं साधु बना था। मैं उसके पीछे पड़ ही गया था। उसके सम्बन्ध में कई रिपोर्टें मिल चुकी थीं। इसीसे कप्तानवीक के खूनी की खोज में उसकी तलाशी भी ली थी और तरह तरह की पूछताछ की थी किन्तु वह साफ निकल ही गया।

× × × ×

ट्रेन चली जा रही थी मैं साधु वेश में उसी की बगल में बैठा था। बम्बई का भिखारी आज पूरा कलक्टर बना सिगरेट पीने लगा। कोट, पेन्ट, बूट, चश्मा, हैट और नेकटाई, में वह बड़ा भला लगता था। कभी-कभी वह मुस्करा देता था। सिगरेट पीने के बाद वह पाकेट से कई तरह के कागजात निकाल कर देखने लगा। एक खुला लिफाफा जिसमें कुछ लिखा हुआ कागज था, मेरी बगल में सरक आया, बाकी कागजात पाकेट में रखते हुए वह निश्चिंत बैठ गया। कुछ आशा से मैंने उक्त लिफाफा अपनी रिपोर्ट बुक्स के बस्ते की दराज में घुसेड़ दिया फिर दुबारा अपनी पोटली खोलकर चालाकी से उसे सम्भाल लिया। उसने फिर सिगरेट सुलगा कर लम्बी कश ली और एंजिन की तरह धुवां मेरे मुंह पर उगलने के बाद "आपको तकलीफ होती रही है।" कहकर सामने की सीट पर बैठ गया। अब मुझे अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ किन्तु अब क्या हो सकता

था ? तीर तो छूट चुके थे। जब वह मुस्कराने लगा तब मेरा दम और भी निकलने लगा।

"टिकट........... ... .. टिकट।"

"बाबू, नहीं है।"

"तो उतर जावो, गाड़ी पर बिना टिकिट क्यों चढ़ा ?"

"खाने को तो मिलता नहीं; टिकट कहां से लाएं साहबजी ?"

"यह सब मैं नहीं जानता। उतर आओ।" टिकट चेकर के क्रोध पर वह किसान डर गया और गिड़गिड़ा कर दया की भीख मांगने लगा। किन्तु उसने एक न सुनी। हमारे कलक्टर साहब ने बड़ी नम्रता से उसके पैसे खुद अदा किये और ऊपर से उसके हाथ पर भी कुछ सिक्के रख दिये। किसान कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। किन्तु उस ओर मैं सोच कैसे सकता था ? खुद भी तो डबल्यू. टी. (बिना टिकट) था। बड़ी आफत मेरे सिर पर आई। पैसे काफी थे किन्तु साधु वेश में और रुपये निकालना जरा मर्यादा और बुद्धिमत्ता से विरुद्ध जान पड़ा। और उधर झिड़की खाने का डर भी लग रहा था।

"मैं साधु. मेरे पास कहां से................।"

"जी हां, साधु वेश में डाकू भी घूमा करते हैं। टिकट चेकर मेरी ओर घूर रहा था और कलक्टर साहब को क्या ?

उनकी मुस्कराहट उपहास युक्त-अट्टहास में परिणत हो गई। मैंने लज्जा से सर नीचा कर लिया। तिरछी निगाह करके अपटूडेट साहब को देखा और फिर सिर खुजलाने लगा—जैसे तैसे कुछ भी तो समय कटे।

आखिरकार किसान की तरह मुझे भी बाबूजी का अहसान लेना पड़ा। मैंने कहा:—"बाबू असहायों की सहायता आप करते हैं। पूजनीय हैं, आप देवता हैं।" "नहीं महाराज! यह आप क्या कहते हैं? यह तो मेरा कर्त्तव्य और धर्म था। बड़ी नम्रता से बोले।

"बाबूजी आपको ललाट पर क्या हुआ है? फाया क्यों लगाया है? मैंने पूछा।

"इसी फाया का सफाया करने की इतनी जबर्दस्त कोशिश की जा रही है साधूजी!" यह व्यंग कितना मजेदार था।

"क्या मतलब बाबूजी?" मैं जैसे नींद से जागा।

"कुछ नहीं यही कि यह घाव भी दवा से साफ हो जायेगा, शायद बहुत जल्दी ही"।

"ईश्वर करे ऐसा ही हो!" मैं क्यों न आशीर्वाद देता? उनकी तारीफ करते हुए मैंने कहा:—आपको कहीं देखा है जैसे?"

हां, मुझ गरीब को बम्बई में या जबलपुर में राबर्टसन कॉलेज के आस पास देखा होगा। क्योंकि मैं वहां अपने मित्र के पास अक्सर जाया करता था। वहीं जा भी रहा हूं महाराज !"

"बड़ी खुशी, मैं भी वहीं शहर में उतरूंगा।"

स्टेशन आगया मैं उतर कर उसके अनुरोध से आगे-आगे चलने लगा। गेट से निकलते ही, मैंने उसे गिरफ्तार कराने के लिये पुलिस की ओर नजर दौड़ायी ही थी कि मेरी रिपोर्ट बुक का बस्ता जो रामायण-गीता की पोथी बना था, धीरे से खिसक गया और "नमस्ते खुफ़िया साहब !" के शब्द मेरे कानों में पड़े। ज्योंही अचकचा कर पीछे देखा मेरे बस्ते के साथ वह चम्पत हो गया। मैं बुद्धू बनाचित्रवत् खड़ा रहा। लेने के देने पड़े। किन्तु अब मुझे पूरा निश्चय हो गया कि—

वह क्रांतिकारी था।

२० जौलाई १९४३]

मरियम

[रचयिता—दीनानाथ व्यास "विशारद"]

पहिले तो उसने घबराई हुई निराश आंखों से सामने देखा। देखकर एक क्षण के लिये ठिठक गई किन्तु साहस करके दूसरे ही क्षण फाटक के भीतर हो गई।

अफगान युद्ध बड़े ज़ोरों पर था। हज़ारों भारतीयों और अंग्रेजों की जानें जा चुकी थीं। अफगानी मैदान की लड़ाई बहुत ही कम लड़ते, पहाड़ों में छुपे हुए एकाएक अंग्रेजी सेना पर टूट पडते और सजग होते-होते जो सामने आया, मारकर पहाड़ों पर जा छिपते। जो घायल किये जाते वे काबुल के अस्थायी अस्पताल में भरती हो जाते। अस्पताल भी खचाखच हताहतों से भरा था।

—सीधी वह डाक्टर के पास पहुंची और सलाम करके एक किनारे खड़ी हो गई। रह-रह कर उसकी दृष्टि उन पलंगों की ओर जाती जिन पर पड़े घायल सैनिक कराह रहे थे। वह प्रत्येक के चेहरे को घूर-घूर कर देखती जैसे किसी को खोज रही है। कहीं डाक्टर उससे कोई बात पूछ लें और वह दूसरी ओर ध्यान होने से उत्तर न दे सके, इसलिये बार-बार घायलों की ओर से ध्यान हटाकर वह डाक्टर की ओर भी देखती जाती।

इतने में डाक्टर ने उससे पूछा—"आप किसे चाहती

हैं ? ” करुण नेत्रों से डाक्टर से बिना कुछ कहे एक कागज का टुकड़ा उसके हाथ में दिया उसे पढ़ डाक्टर ने बीमारों के लम्बे चौड़े रजिस्टर को उलट-पुलट करना आरम्भ किया। आखिर एक जगह वह अटका और उस स्त्री के दिये हुए कागज में फिर देखते उसने स्त्री से, रजिस्टर पर निराश होकर हाथ पटकते हुए कहा—“ अफसोस है कि वह नहीं रहा। ”

स्त्री जैसे ज़मीन में धंस गई। उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखों से दो बूंद गालों पर ढुलक गये। उसने संभलते हुए पूछा—“ तो डाक्टर ! उन्हें कहां दफ़नाया गया है ? ”

डाक्टर ने उसांस भरते हुए कहा—“सामने के कबरिस्तान में!”

डाक्टर को धन्यवाद देती, नीची गरदन किये युवती बाहर चली आई।

सामने के कबरिस्तान में घुसकर उसने एकाएक कबरिस्तान का पत्थर देखा पर उसे अपने मुहम्मद की क़ब्र न मिली। धूप बहुत ही कड़ी थी, परिश्रम से थकी हुई युवती पसीने में नहा रही थी। वह एक छायादार घने वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गई। बैठे-बैठे अनायास उसकी नजर एक तरफ कोने में स्थित एक क़ब्र पर जा पड़ी—जैसे उसे आशाका संचार हुआ। उसकी थकान आशा के उदय पर जैसे भाग निकली। वह उस क़ब्र पर पहुंची। सीधा सादी ईंटों की क़ब्र ! एक तरफ एक छोटा-सा पत्थर जिस पर लिखा था—

" मुहम्मद, जिसका परिचय मालूम नहीं, अफगान युद्ध में वीर गति प्राप्त कर यहीं सोता है। ईश्वर उसकी आत्मा को शान्ति दे।"

इस लेख को पढ़कर तमाम पुरानी स्मृतियां युवती के जर्जरित हृदय में जागृत हो उठीं। साल भर पूर्व झेलम के रम्य तट पर की अलसाई संध्या जिसमें दोनों ने एक दूसरे से विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी, उसके सामने घूमने लगी। वही खिलखिलाती चांदनी रात—जिसमें काज़ी ने आजीवन उन्हें कुरान की आयतों के सहारे प्रेम सूत्र में बांधा और वह सुहागरात की जगमगाती के रात—एक के बाद दूसरा—इस तरह अनेकों दृष्य उसकी आंखों के सामने आये। और सुहागरात की मीठी बातें, जिनमें स्वर्गीय आनन्द की मधुर हिलोरें लहरातीं, अनायास किसी के आवाज़ देने से जैसे टूट रही है—मुहम्मद आवाज़ सुनकर प्रफुल्ल बदन बाहर जा रहा है और लौटकर सजी सजाई पलंग पर बैठी युवती से जैसे कहता है—" प्रिये मुझे कल ही दोपहरी को अफगान युद्ध में जाना है "—युवती उदास हो जाती है। सिर पर हाथ फेरते हुए मुहम्मद प्यार से उसे फिर कहता है—" चिन्ता न करो मरियम ! जल्दी ही विजयी होकर फिर मिलेंगे। तब का आनन्द तुम जानती हो " —ढाढस बांधते हुए मरियम को जैसे नींद आ जाती है दोनों पलंग पर लेट कर सब कुछ भूल सा जाते हैं ! दूसरे दिन मरियम हंसी खुशी जैसे मुहम्मद को युद्ध के लिये रवाना करती

है। सैनिक वर्दी में लैस मुहम्मद पीछे लौटकर देखता है—मरियम की आंखें गीली। वह फिर एक उंगली मरियम के गालों पर छुआता मुस्कराता—"पगली"—कहता चला जाता है। इसके बाद—इसके बाद मुहम्मद यहां सो रहा है—हमेशा ही सोते रहने के लिये—

मरियम कांप उठी। वह धड़ से मुहम्मद की कब्र पर गिरी। और उसे दोनों बाहुओं में भरकर रोने लगी। रोते-रोते उसने महीनों की धूल भरी कब्र को नहला दिया।

संध्या हो आई पर मरियम के लिये आज की संध्या और झेलम के किनारे मुहम्मद के साथ बिताई हुई सन्ध्या में कितना अन्तर था !!

और यह भीषण अन्तर केवल तीन माह में !

× × × ×

मरियम का जीवन अब नव विवाहित नाना प्रकार की उमंगों से भरी स्वर्ग सुख के सुखद स्वप्न लोक में विचरण करने वाली युवती का नहीं बरन एक सती साध्वी का जीवन हो गया जिसमें अब बसन्त का सौरभ, शरद की चांदनी और शीत की मधुरता रंच भी नहीं। जहां वह कुछ ही पहले लम्बी-लम्बी रातें मुहम्मद की प्रतीक्षा में बिता देती, जहां उसकी सुखद

प्रतीक्षा में लम्बी रातें भयानक नहीं, मधुर स्मृति में सहज कट जातीं, वहीं अब वे ही रातें निराशा में लम्बी लम्बी उसासें भरते, रोते पहाड़ सी हो जातीं।

साल भर तो मरियम इसी तरह एक गन्दे से मकान में रोते-रोते बिता देती, न जाने क्यों पहिली जून का दिन वह भूल न पाती। इस दिन तो वह बिलकुल शुभ्र वसना हो बहुत सी फूलमालाएँ बनाती और सुबह होने के पूर्व ही मुहम्मद की क़ब्र पर जा बैठती। दिन भर वहीं बैठी-बैठी अपनी समग्र स्मृतियां वह जाग्रत करती खूब रोती। उसे ऐसा लगने लगता जैसे मुहम्मद क़ब्र से बाहर आकर इतने दिनों बाद मिल रहा हो और मरियम उसकी इसी निष्ठुरता पर आंसू बहा रही हो।

शाम होने आती और मरियम चौंक उठती। भीगी आंखों से वह अन्तिम बार मुहम्मद की समाधि को देखती और कुछ गुनगुनाती विदा लेती।

दस साल इसी तरह मरियम मुहम्मद की क़ब्र पर स्मृतियों के एकान्त मेले में सम्मिलित होती रही।

अब वह ग्यारहवीं बार मुहम्मद की क़ब्र पर जायेगी।

आज ३१ मई है!

वह हर साल की तरह कल के लिये मालाएँ तैयार करके

रख रही है। उसने अपने शुभ्र कपड़ों पर इस्त्री कर डाली। कल के लिये स्नान करने की योजना में व्यस्त मरियम से डाकिये ने पूछा—" मिसेज़ मुहम्मद मरियम तुम्हारा नाम है ? "

मरियम ने स्नान करते मुक्त वस्त्रों को बदन पर ओढ़ते कहा—" हां ! "

" तो यह अपना ख़त लो "

मरियम स्तब्ध सी रह गई कि उसका कौन !—न मां न बाप, रहा पति सो उसी के लिये तो वह स्नान कर रही है।

उसने पत्र लेकर खोला। ऊपर ही कोने पर लिखा था—

" लन्दन "। लन्दन में उसका कौन ? उसने उसी आश्चर्य भरी स्थिति में मिलने वाले का नाम पढ़ा—" मुहम्मद अली मुहिम " —यह तो उसके पति का नाम !

फिर वह क़ब्र किसकी ?

उसकी समझ में कुछ भी न आया। वह व्याकुल हो गई। थोड़ा भी चित्त शान्त हो तो सोचे। इसलिये कमरे में जाकर बैठ गई। वहां उसने पत्र पढ़ा -

" प्यारी मरियम !

आज से दस साल पहले मैं, तुम्हें, रोती छोड़कर अफ़गान युद्ध के लिये विदा हुआ। वहां मेरे सर में गहरा घाव लगा। चार महीने अस्पताल में इलाज हुआ, घाव भर गया, पर चोट की गम्भीरता के कारण मैं पागल हो गया----मेरा दिमाग फिर गया। मेरी युद्ध की सेवाओं का विचार करके मेरे कमांडर ने सरकार से मेरी सिफारिश की और मैं लन्दन में इलाज के लिये भेज दिया गया यहां मैं गत माह अच्छा हो सका हूं। पांच बार तो, मेरी मरियम! मेरे सर का आपरेशन हुआ। जब मेरा पागलपन दूर हुआ तो मेरे कमांडर की सिफारिश से मैं सीमान्त सेना का एक कप्तान बना दिया गया। होश दुरुस्त होते ही मुझे तुम्हारी याद सताने लगी, पर मेरे पास कोई जरिया नहीं था----तुम्हारा पता नहीं था। तुम्हारी याद में मैं इतना बेचैन हो उठा कि मुझे लाचार हो तुम्हें शहर के पते पर ही पत्र डालना पड़ा। मैं शीघ्र ही हिन्दुस्थान रवाना हो रहा हूं। तुम मुझे भूल तो नहीं गई? क्यों? मैं शीघ्र ही मिलूंगा। इतने सालों बाद कैसे मिलोगी मेरी मरियम! रिसाते या हंसते हुए?"

मरियम परेशान थी। पत्र को हाथ से मसलती मरियम झपटी हुई कब्रिस्तान में पहुंची। वहां के वृद्ध रक्षक के पास जाकर उसने पूछा।

"मेरे साथ तो चलो!"----कहती हुई मरियम ने वृद्ध

का हाथ खींच लिया। वृद्ध खांसता हुआ खिंचता चला गया। मुहम्मद की क़ब्र पर ठहर कर मरियम ने कहा---"यह"

"यह तो मुहम्मद की है, पढ़ा नहीं तुमने बेटी! लिखा जो है।"

"मुहम्मद कौन बाबा! उसके वालिद का नाम क्या था?---उत्सुकता से वृद्ध की ओर देखते मरियम ने पूछा।

वृद्ध उसकी मुखाकृति देख पसीज गया। बोला—

"बेटी! बाप का नाम तो मालूम नहीं; पर यहां हर माह इसकी विधवा और मां दोनों फूल चढ़ाने आती हैं। मुझे तो बस इतना ही पाता है।"

× × × ×

बारहवें वर्ष की अब पहली नहीं बारहवीं जून।

चारों तरफ कब्रिस्तान में चांदनी खिलखिला रही है। मुहम्मद की क़ब्र पर उसकी वृद्धा मां और विधवा फूल चढ़ा रही हैं।

कप्तान मुहम्मद और मरियम सामने खड़े उसी ओर देख रहे हैं।

मरियम की ओर मुँह करके कप्तान मुहम्मद ने पूछा---
"मरियम! अब तुम्हारी स्मृतियां जागृत क्यों नहीं होती?"

मरियम आंख गड़ाये छत की ओर ही देख रही थी। न
न जाने क्यों?"

१२ जून १९४३]

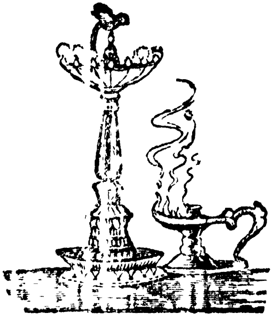

बलिदान

[रचियता—रामेश्वरप्रसाद दुबे 'मंजु']

वाह ! कितनी मनमोहिनी और लावण्यमयी थी वह ! उसको देखते ही उसका शरीर मनको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता, दृष्टि थोड़ी देर के लिये जम जाती। उसकी मीठी बोली हृदय में विचित्र हलचल मचा देती तो मेरा दिल लोट-पोट हो जाता। उसकी ज़रा-सी जान थी और सूक्ष्म शरीर किन्तु जिसने उसे एक बार देखा वह उसे दूसरी बार देखने को उत्सुक हो उठता, जिसके कानों में एक बार उसकी सुरीली आवाज पड़ गई वह दुबारा सुनने को तड़फता रहता। उसने दिलों को लूट लिया था। अनेक अरसिकों को रसिक बना दिया था। बेदिल उसके हृदय के उपासक हो गये थे। सचमुच एक तूफान सा मचा दिया।

* * * *

उसकी छोटी-सी चोंच थी पर बहुत सुन्दर। लाल-लाल आंखें पर गजब की खूब सूरत वे लाल थीं। पर हरे थे। असल में तीनों रंगों का त्रिवेणी की भांति संगम हुआ था। वह अकेली इस भूतल पर थी। आकाश छाया और पृथ्वी उसका निवास स्थान था। एकान्त जीवन प्रिय था। दिन भर वह इधर-उधर फुदकने में बिता देती। कहीं गाती कहीं रोती इसी तरह अपना पंचतत्व का पुतला भर लेती। रात्रि की अंधेरी में वह वृक्ष

पर सो लिया करती थी। प्रातः ही उसकी सुरीली तान छिड जाती और उसका मधुर आलाप सुनने को भास्कर जल्दी झांकने लगते। और संध्या काल में वियोग सहन न करके रक्त रंजित अवस्था में अस्ताचल को जाने लगते। सचमुच प्रेम द्वन्द होता।

*   *   *   *

समय समय पर उसका मनोमुग्धकारी गायन लोगों की दैनिक चिन्ताओं को भुला देता और प्रकृति के दृश्यों, सुरम्य दृश्यों की ओर उनकी प्रकृति पलट जाती। जहां शान्ति सौन्दर्य, और स्वतंत्रता मय जीवन बिताया जा सकता है कभी वह श्रोताओं के हृदयों में तहलका मचा देती जिससे लोग कह उठते थे "सचमुच में यह कोई वियोगी है जो पक्षी रूप में अपने दिल के पुजारी की खोज में फिरता है।" जीवन के उस मल्लाह की खोज में जो कि जीवन नौका को पार लगाता है।

*   *   *   *

योगी विनय जंगल में रहते थे छोटी झोंपड़ी सुन्दर थी। संसार से घृणा हो गई थी। भोला स्वभाव पशुओं को भी मोह लेता था सारे बन पशु उन्हें घेरे रहते थे। जिस दिन से उन्होंने इसे देखा तभी से वे इसपर मोहित हो गये उनका मन विचलित हो गया उसका मनोमुग्धकारी गायन इन पर पूर्णतः असर कर गया। वे अपने आपको भूल चुके थे। जब वह विनय की ओर आती तो वे अपना कार्य छोड़ देते और उसे चुगाने बैठ

जाते। पीने को पानी रखते। इस तरह विनय का समय निकल जाता था।

*　　*　　*　　*

कहा है 'Love is immartal' प्रेम मरता नहीं ठीक यही लगन विनय और चिन्ता में लग चुकी थी। प्रति दिन का आवागमन उनमें सुदृढ़ गांठ लगा रहा था। यहां तक आशा सफल हुई कि 'चिन्ता विनय के हाथ पर आकर बैठने लगी। विनय कहते 'गाओ' वह जरासा पक्षी गाने लगता। और जैसा विनय कहते करने लगता। इतना सब कुछ होने पर भी अन्त में वह पक्षी ही था विनय की इच्छाओं का दमन कर उड़ जाया करता। वह स्वतंत्रता का भक्त था। परन्तु विनय उसे अपने पास सदैव रखना चाहते थे। होते-होते विनय यह दृढ़ निश्चय कर चुके कि मैं अवश्य ही इसे पकड़ूंगा।

*　　*　　*　　*

चिन्ता नित्य आती और चली जाती पर वह यह नहीं जानती थी कि उसे एक दिन इसी जगह कैद में पड़ना पड़ेगा। वह दिन शीघ्र ही आ गया और चिन्ता पिंजरे में कैद करली गई। कैद में आन उसने दर्द भरा आवाज़ में कहा—

'जिसने दिया है दर्द दिल, उसका खुदा भला करे।

करुणा भरे शब्दों से वृक्षों के पत्ते और फूल तिलमिला उठे। पहाड़ों के शिखर पिघल पड़े नदियों का वेग रुक गया।

सारे जन समूह का हृदय टूक टूक होने लगा। सारे वन-पशु शोक से व्याकुल हो उठे। सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य था। छोटा-सा पक्षी मौन बैठा था।

*   *   *   *

विनय उसके दुःख का अनुभव न कर सके और विचार करने लगे संभव है इसे समय पर दाना-पानी न मिले इससे पास रख लेना अच्छा है। परन्तु वे स्वयं कैदी न रहे थे। इससे वे स्वतंत्रता का मूल्य न आंक सके।

लोहे के पिंजरे में बन्द 'चिन्ता मौन बैठी थी। न खाया न पिया। आंखें किसी विशेष विचार में तैर रही थीं। योगी विनय समझे आज उदास है संभव है कल खा लेगी। पर सब उल्टा हुआ। उसका उपवास चालू ही रहा। तब विनय ताड गये कि यह स्वतंत्र जीवन पसन्द करती है। परतन्त्रता में रहना इसे स्वीकार नहीं है।

*   *   *   *

उपवास का आज तीसरा दिन था। विनय का हृदय दहल उठा और उन्होंने पिंजरे का दरवाजा खोल दिया और बोले "चिन्ता बाहर चली जा" पर चिन्ता बाहर उड़ी नहीं और ज्यों की त्यों बैठी रही। योगी विनय ने उसे बाहर निकाला तो क्या देखते हैं उसका शरीर का ढांचा मात्र शेष था। उसकी आत्मा कभी की इस संसार को छोड़ चुकी थी।

विनय के मुंह से रोते हुए ये शब्द निकल पड़े "क्या प्राण विसर्जन ही स्वतंत्रता है !"

* * * *

चिन्ता ! जाओ तुम्हारा बलिदान सफल हुआ। तुम्हें स्वतंत्रता प्राप्त हुई। तुम शरीरतः न सही आत्मा से तो स्वतंत्र हो गई ! भोले पक्षी तुम अमर हो यही कहते-कहते विनय जंगल में चल दिये। उन्हें फिर किसी ने न देखा।

१० अप्रेल १९४०]

नौ अगस्त

[रचयिता—श्रीनिवास जोशी बी. ए.]

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी का शानदार जलसा लगातार दो रोज की बैठक के बाद आठ अगस्त की रात को दस बजे खत्म हो गया। पूज्य महात्माजी के अन्तिम भाषण ने जनता में विलक्षण जागृति पैदा कर दी। पंडाल की तरफ से लौटने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक नवीनता अनुभव करने लगा। सब बस एक ही नारा दुहरा रहे थे—" करो या मरो "।

दूसरे दिन याने नौ अगस्तको सुबह आठ बजे राष्ट्रपति द्वारा झंडा वन्दन होने वाला था और उसके बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू का भाषण। अपने घरों की ओर लौटने हुए लोगों के झुण्ड उसी विषय की चर्चा कर रहे थे।

ऐसे ही एक जन समूह के बीच मे एक अंग्रेज़ युवती और एक खद्दरधारी युवक एक मोटर की ओर बढ़े जो सड़क के एक किनारे खड़ी हुई थी। दोनों के मोटर में बैठने के पश्चात् ड्रायवर ने मोटर स्टार्ट कर दी। अंग्रेज़ युवती ने खद्दरधारी युवक की ओर देखकर कहा—" आज आपने मेरे लिये जो कष्ट किया उसके लिए मैं आपकी एहसान मन्द हूँ। "

युवक ने मुस्कराकर उसी भाषा में उत्तर दिया—" इसमें

धन्यवाद देने की कोई बात नहीं है। पूज्य बापूजी का सन्देश देश के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं। मैंने आज आपके प्रति उसी कर्त्तव्य का पालन किया है।'

युवती ने कहा—"फिर भी मैं आपको धन्यवाद दिए बगैर नहीं रह सकती।

युवक ने कहा—"यह आपकी उदारता है।"

थोड़ी देर के लिये दोनों शांत हो गये। फिर कुछ याद करता हुआ वह नवयुवक बोला—"हां तो कल भी आप आ रही हैं न ?"

"अवश्य ;"—प्रत्युत्तर मिला।

"पर हम लोग मिलेंगे कहां ? उस अफाट जन समूह में से आप मुझे ढूंढ तो नहीं सकेंगी !"

"अगर आप कहें तो मैं कार लेकर आपके घर पर चली आऊं।"

"नहीं; नहीं; उसकी कोई आवश्यकता नहीं।"

"फिर हम लोग मिलेंगे कहां ?"

"अच्छा हो पंडाल के समीप ही ऐसी कोई जगह

निश्चित करली जाय जहां हम आसानी से मिल सकें।"

"हां! यह बहुत अच्छी बात है। कहां मिलेंगे हम?"

"देखिये,"—युवक ने कुछ सोचकर कहना शुरू किया—"झंडा-वन्दन" के पश्चात् जब सब लोग पंडितजी के भाषण के लिए पंडाल की तरफ बढ़ेंगे, ठीक उसी समय हम लोग झंडे के पास आकर मिलेंगे।"

"बहुत ठीक। खूब सोचा आपने।"

"धन्यवाद।"

मोटर कुछ देर तक शांति पूर्वक बम्बई की सड़कों पर दौड़ती रही। आखिर विद्यार्थी संघ के दफ्तर के सामने युवक ने ड्राइवर से मोटर रोकने के लिए कहा।

युवती को प्रणाम कर वह नीचे उतर पड़ा और झूमता हुआ आफिस की ओर बढ़ा।

"एक बात सुनिये?—उस युवती ने मोटर में से कोमल स्वर में कहा।

"जी कहिये!"—उसने लौट कर उत्तर दिया।

"मेरे आज के उपकार कर्ता का नाम मैं जान सकती हूँ?

"क्या कीजिएगा नाम जानकर?"

"कुछ नहीं । फिर भी बतलाइए न ?"

"मुझे लोग कांती कहते हैं ।"

"धन्यवाद ।"—कहते हुए उस युवती ने दोनों हाथ जोड़कर कांती को प्रणाम किया । कांती चल दिया ।

युवती ने ओठों ही ओठों में दो तीन बार वह नाम दोहराया और मोटर स्टार्ट होते ही उसने जोर से कहा—"विद्यार्थी संघ का सभापति—कांती ।"

फिर वह चुप हो गई ।

ड्रायवर कुछ समझ न सका ।

"मुझे कुछ कहा आपने ?" उसने गर्दन घुमाकर पूछा

"नहीं चले चलो ।"—कहकर युवती न जाने किस विचार में मग्न हो गई ।

मोटर चर्चगेट की ओर तेज़ी से बढ़ रही थी ।

× × × ×

आज प्रातःकाल से ही बम्बई की जनता ग्वालिया टैंक के मैदान की ओर उलट रही थी । ट्राम, मोटर और रेलगाड़ियों के सभी मुसाफिर कांग्रेस पंडाल की तरफ बढ़ रहे थे । "भारत माता की जय", महात्मा गांधी की जय", "पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय" आदि नारों से सारा बम्बई शहर गूंज रहा था ।

लेकिन पंडाल तक पहुंचने पर सभी निराश होकर वापिस लौटते। कारण—

—पंडाल को पुलिस घेरे खड़ी थी !

—कांग्रेसी नेता रात ही को पकड़े जा चुके थे !!

—सारे शहर में धर पकड़ शुरू हो गई थी !!!

भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस लाठी चार्ज कर रही थी। अश्रुवायु की सहायता भी वे बीच-बीच में ले रहे थे।

सारे शहर में हाहाकार मच रहा था। थोड़ी ही देर में चारों ओर बेचैनी नज़र आने लगी। लोगों के झुण्ड के झुण्ड बीच सड़क में खड़े होकर "अंग्रेजों भाग जाओ" के नारे लगाने लगे। और सड़क पर से गुजरने वाले विदेशियों को परेशान करने लगे।

कुछ देर बाद दूसरा दृश्य दिखाई देने लगा। जगह जगह पर हैट और टाई की होली शुरू हो गई। विदेशी कपड़े जलाये जाने लगे। धीरे-धीरे ट्राम और मोटरों को भी लोग जलाने लगे।

सब दूर अशांति नज़र आने लगी। नर नारियों के भीषण कोलाहल वातावरण को और भी गंभीर बनाने लगा।

दूकानें बन्द होगईं। शहर के सारे व्यवहार रुक गये। चारों

ओर पुलिस का दौर दौरा था। जगह जगह पर भीड़ पर लाठी प्रहार हो रहा था। निरापराध पकड़े जा रहे थे। सब ओर त्राहि त्राहि मच गई थी।

× × × ×

विद्यार्थी संघ के ऑफिस को पुलिस घेरे खड़ी थी। एक अंग्रेज सार्जेंट और पुलिस के कुछ जवान संघ के दफ्तर की तलाशी ले रहे थे। संघ के सभापति कांती को हिरासत में ले लिया गया था। सार्जेंट जाने क्या गालियां बक रहा था। पर कांती शांत था। दफ्तर के कागजों की जांच पड़ताल हो रही थी।

कुछ देर बाद चन्द कागजात लेकर सार्जेंट ने कहा—
'चलिये मिस्टर कांती बाबू।'

'जी। मैं प्रस्तुत हूं।'—कांती ने उत्तर दिया। और कांती को सार्जेंट संघ के दफ्तर से बाहर आने को निकला। इतने ही में दफ्तर का टेलीफोन जोर से खनखना उठा। सार्जेंट ने आगे बढ़कर रिसिवर कान को लगाया—'आप कौन हैं? मैं कांती बापू से बातें करना चाहता हूं।'—एक आवाज आई।

कांती ने आगे बढ़कर रिसिवर सार्जेंट के हाथ से छीन लिया। क्रोधित सार्जेंट गुरगुराया पर बोला कुछ नहीं।

कांती ने कहा—"हलो"।

"कांती बाबू! मैं हूं बिनू!"

"कहो? क्या कहना चाहते हो बिनू?"—कांती ने कहा। "मुझे अभी २ मालूम हुआ है कि हमारे संघ के दफ्तर की तलाशी ली जा रही है और आपको... ....

"हां, मुझे भी हिरासत में ले लिया है। मुझे सार्जेंट साहब के साथ पुलिस थाने जाना है। देर हो रही है। तुम क्या चाहते हो बिनू?"

"यहां विद्यार्थियों की एक भीड़ ने एक अंग्रेज युवती को घेर रखा है। वे उसे परेशान कर रहे हैं। सहायता के लिए वह आपका नाम ले रही है, कल रात गांधी जी का भाषण समझने में आपने उसे मदद की थी।"

"हां, हां; फिर?"

'लड़के उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं और वह तो बार बार आपका नाम ले रही है। बतलाइये, क्या किया जाय?"

कांती के सामने एक प्रश्न आकर खड़ा हो गया।

अगर वह उस युवती को बचाता है तो लड़के उसकी छी छू करेंगे और उसे न बचाया तो........तो—

स्नेह कि कर्तव्य?

कर्तव्य कि स्नेह ?

और दूसरे ही क्षण उसने कहा—'उसे फौरन मुक्त कर दो बिनु ?'

"लेकिन वह एक अंग्रेज युवती है।"

बिनु पागल न बनो। हमारी लड़ाई अंग्रेज जाति से नहीं अंग्रेजी शासन से है।

"ठीक है। अभी जाकर उसे मुक्त करवाता हूँ।"

"हां" कहकर कांती ने रिसिव्हर रख दिया।

"मैं तैयार हूँ सार्जेंट साहब ! आप क्या सोच रहे हैं ?"

"कुछ नहीं—कहते हुए सार्जेंट आगे बढ़े और कांती को मोटर में बिठा थाने की ओर रवाना हुए।

× × × ×

थाने पर पहुँचते ही सार्जेंट साहब कुर्सी पर जा बैठे; कांती अपराधी की भांति टेबल के पास खड़ा रहा। अभी उनमें बातचीत भी शुरू नहीं हो पाई थी कि एक मोटर कॉर थाने के द्वार पर रुकी और एक युवती घबराई हुई सी मोटर से नीचे उतरी और सार्जेंट साहब के बिलकुल निकट जाकर उसने

कहा---" आज तो मैं मर ही गई थी। लेकिन एक हिन्दुस्थानी युवक ने मुझे बचाया। " और इतने ही में उसकी नजर क्रांती पर पड़ी।

" ओह आप ? आप यहां कैसे ? "

" जी ! यह सार्जेंट साहब की महेरबानगी है। "

" पिताजी ! "

" बेटी ! "

" इन्होंने तो मेरे प्राण बचाये हैं। काश आज इनकी सहायता मुझे न मिली होती............ ? "

" क्या कहती हो बेटी ? "

" हां पिताजी ! आप इन्हें पकड़ लाये हैं ? छोड़ दीजिये इन्हें ? "

" नहीं बेटी ! सो तो मुझसे नहीं हो सकेगा ! " " और क्रांती की ओर देखकर उन्होंने कहा---क्रांती बाबू ! आज के मेरे दुर्व्यवहार के लिये मुझे क्षमा कीजिए॥। आज का दिन---- इस नौ अगस्त का दिन----मेरे जीवन में अमर हो गया। आज पहली बार मुझे मालूम हुआ कि भारतीय इतने सहृदय होते हैं। पुलिस की नौकरी ने मेरी बुद्धि पशु जैसी कर दी

थी। जन्मभर की पशुताने ही आज मुझे इस पद पर पहुंचाया था। लेकिन आज मेरा भ्रम दूर हुआ। अब मैं जुलम न ढा सकूंगा! आज ही मैं अपने पद का इस्तीफा दे दूँगा! आज यह गड़बड़ न हुई होती----नौ अगस्त की हलचल न मची होती तो... ....!"

"नौ अगस्त अमर हो।" "नौ अगस्त जिन्दाबाद" कहते हुए सार्जेंट उठ खडे हुए।"

कांती और वह युवती आश्चर्य से सार्जेंट की ओर देख रहे थे।

९ अगस्त १९४२

वह बहन

[रचयिता—नारायणप्रसाद शुक्ल]

वे सन् सतावन के दिन थे। अंग्रेजी राज्य की जड़ जम रही थी, भारतीय जनता कम्पनी के शासन से तंग आ चुकी थी। देश में सर्वत्र हाहाकार और अराजकता फैली थी सिपाहियों के दल के दल बादल की तरह घुमड़ घुमड़ कर आते और लूट खसोट मच जाती। स्वतन्त्रता के उपासक जान हथेली पर लिये, शासन तन्त्र को उलट देने के लिये लोहे से लोहा बजा रहे थे। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध यह पहली सशस्त्र क्रांति थी। गांव के गांव बागियों के झण्डे के नीचे संगठित हो रहे थे। भयग्रस्त अंग्रेज परिवार इधर से उधर भटक रहे थे। सड़कें निरापद न थी। किन्तु अबलाओं पर हाथ उठाना भारतीय मर्यादा के प्रतिकूल है—आज की तरह दिन दहाड़े सतीत्व न लुटता था—वीर, वीर से लड़ना जानता है, वह दीन अबलाओं पर हाथ उठाना नहीं जानता।

मेरठ, दिल्ली, इलाहाबाद, ग्वालियर, कानपुर जिस तरह फिरंगियों से लोहा ले रहे थे; उसी प्रकार बिठूर भी प्रधान केन्द्र था। नाना के नेतृत्व में बिठूर कब पीछे रह सकता था।

शेरशाह सड़क आगरा व अवध सूबे की प्रमुख सड़क है कन्नौज और बिठूर के बीच में बिल्हौर प्रमुख पड़ाव है कन्नौज

का भाग्य सूर्य जब मध्याह्न में था—बिल्हौर कन्नौज का पूर्वीय द्वार था। गंगा और ईशन के संगम पर बसा हुआ यह नगर व्यवसायिक नगर था। बड़ी-बड़ी नावें माल से लादी जातीं और माल से लदी चली जाती थीं। उन दिनों नदी और सड़क का महत्व था, और यही व्यवसाय के प्रमुख साधन थे।

चांदनी रात में बाजार कटरा अण्डी के तेल के दियों से जगमगा रहा है। बाजार से जाती हुई शेरशाह सड़क चहल-पहल से भरी है, सड़क के दोनों ओर दुकानें लगी हैं। बाजार के पश्चिमी सिरे पर सराय है। सराय से लगा लम्बा चौड़ा पड़ाव का मैदान है। बीच पड़ाव में सड़क के किनारे बनखण्डीश्वर महादेव की मठिया और उसके निकट कुआ है। धुंवे से चांदनी रात धुंधली पड़ गई है। कोई रोटी बना रहा है तो कहीं चूल्हे जलाये जा रहे हैं। कुवे पर भीड़ है--डोल और रस्सियों की रगड़ गिर्रियों की गड़गड़ाहट----कोलाहल सा मचा है।

सराय से आगे कुछ दूर आगे जो नीम का पेड़ है वहीं पर नगर-द्वार का भग्नावशेष है—एक खम्भा खड़ा है दूसरा टूटा हुवा पड़ा है। लाल पत्थर के इस द्वार पर एक चक्र खुदा है और टूटे हुए खण्ड पर शान्त मुद्रा में तथागत ध्यानस्थ हैं। उनके निकट एक स्त्री चरणों में झुकी निवेदन कर रही है।

दुकानों की भीड़ छट चुकी है। सड़क के दोनों ओर फैला हुवा नगर और उसके अन्तर में समाई हुई गलियां, कई

ईंट की हवेलियां कच्चे पक्के मकानों की पंक्तियां—सब कुछ मौन हैं। आकाश और जालियों में समाया अन्धकार दोनों दैत्याकार से प्रतीत होते हैं। सर्वत्र भय है और है त्रास। शान्ति में मृत्यु सा निःशब्द क्रन्दन है।

नगर से दो मील पश्चिम की ओर सड़क पर तीन प्राणी भाग्य से लडते—लड़खड़ाते चले आ रहे हैं। सब मूक हैं—जेनी के पैर में सहसा ठोकर लगी उसके मुख से निकला—उफ्!

"क्या हुवा जेनी"—हेग ने कहा!

"कुछ नहीं"—वह हंसी करने लगी—"यही एक मामूली ठोकर लग गई है" शुभ्र चांदनी में हेग ने देखा जेनी के अंगूठे से रक्त बह रहा था। ठण्डी सांस खींचते हुए हेग बैठ गया और रूमाल फाड़ ही रहा था, जेनी ने कहा—वाह! "ऐसी कितनी ही ठोकरें लगेंगी; तुम तो घबरा गये। हेग उसकी ओर देख रहा था जेनी मुस्कराई। हेग भी हँस पड़ा किन्तु वह छोटी बालिका योग न दे सकी। कभी मां की ओर देखती कभी पिता की ओर।

जेनी ने कहा—यह सब कुछ नहीं, भाग्य का खिलवाड़ है। एक दिन वह भी था जब हम अपने देश में दरिद्रता से लड़ते थे। एक लहर आई और हम वे दिन भूल गये, आह! वे दिन! रातें भूखें ही रहकर निकल जातीं। दिन मज़दूरी की

खोज में कट जाते। और फिर वह दिन भी आये जब हमारे हाथों में अधिकार आया और आई सम्पत्ति ! फिर क्या, अभिमान से सब भूल गये। आज फिर वही दर-बदर भटकना ; विदेश में ठोकर खाना। यही तो खिलवाड़ है। चलते-चलते वह खड़ी हो गई, उसकी हंसी ने हेग की विचार धारा को तोड़ डाला।

हेग यह सब सोच चुका है कितनी बार उसने सोचा लेकिन सोचने से ? उसने एक बार जेनी की ओर फिर बालिका की ओर देखा, उसकी गीली आंखें देखती रह गई----गाउन कई जगह से फट चुकी है। उसके सुन्दर केश धूल धूसरित हैं। निराशा से भरी आंखें, आगे वह देख न सका लेकिन इसके आगे जो होने वाला था वह कैसे रुक सकता था ? यह दूसरी ठोकर थी, रक्त के बूंद टपक रहे थे जेनी और हेग देखते ही रह गये। आंखों के आंसू न जाने कहां सूख गये ? हेग का धीरज छूट रहा था।

रूमाल को फाड़ते हुए जेनी ने कहा—बच्चों की यह दुर्दशा देखी नहीं जाती, प्रभु ! इनका क्या दोष था। तुम्हें इनकी चिन्ता करनी थी, और वह रोने लगी।

हेग-अधीर होने से क्या होता है। वह देखो दीपक जल रहा है। चलें वहीं विश्राम करें; प्रयास तो अब करना ही होगा। ओह ! तीन दिन हो गये, फूलसी रोज़ कुम्हला गई। दुखों की भी सीमा होती है।

"मिड़िया पानी दे जा, जग्गू अभीतक नहीं आया। कितनी रात बीत गई ?"

मिड़िया के सिर की ओढ़नी खिसक गई थी, कड़ब काटने में लगी थी। आले में रखा दीप बुझ सा रहा था। बाबा की आवाज़ मिड़िया सुन न सकी किन्तु तभी बाबा की दम उखड़ी और वह खांसने लगे।

"बाबा" खांसी फिर उठी है, पानी लाऊँ ? मिड़िया ने कहा। बाबा ने दम ली और कहा— "हां बेटी ! अभी तो मैंने पानी के लिये बुलाया था। जग्गू अभी तक नहीं आया। कितनी रात बीत गई, जाने कहां भटकता फिरता है।" मिड़िया फिर मचिया पर बैठ गई, गंड़ासा अभी उठाया ही था कि पैरों की आहट पा पीछे घूमी। देखा—"आ गये भइया। बड़ी देर हो गई ? "बाबा" नाराज हो रहे थे।"

मुसाफिर हूं ?—रात काटनी है।

मिड़िया उठी दिये की बत्ती खिसकाई—सामने एक युवक खड़ा था। उसके साथ एक स्त्री और एक बालिका थी। उनके म्लान मुखों से दीनता टपक रही थी।

"कौन तुम ? फिरंगी ?" मिड़िया ने पास आकर देखा—हेग का दिल बैठ गया। साहस बटोर कर उसने कहा—

"हां बहन! फिरंगी हूं! मेरा नाम हेग है, तीन दिन से भटक रहा हूं यदि तुम्हारा सहारा पाता" और मिड़िया की ओर देखने लगा।

मिड़िया के हृदय में द्वन्द्व छिड़ गया—हेग फिरंगी है देश का शत्रु है। उसके दो भाइयों ने स्वतंत्रता के लिये कम्पनी के शासन के अत्याचारों का अन्त करने के लिये वीर गति पाई है। वह उसी शत्रु को घर में ठहराये? छिःछिः कभी नहीं वह नहीं ठहरायेगी: उस समय उसके सामने वह चित्र खिंच गया जब उसका घर इन विदेशियों ने उजाड़ डाला। उसके देश के कितने ही भाई आज नर्क के कीड़ों सा जीवन बिताते हैं।

उसके मन के शब्द मुंह तक आकर रुक गये देखा—निरीह बालिका उसकी ओर देख रही है। युवती की आंखें करुणा से गीली हैं। दीपक के मन्द प्रकाश में स्पष्ट देखा—लाचारी और भूख ने उन्हें कितना आर्त बना दिया है। वह निर्णय न कर सकी।

जेनी—"बहन क्या कहती हो?—हम लोग चले जायं?"

आपत्तिकाल में सहायता करना धर्म है। तुम शरण चाहते हो, शरण में आये हुए की रक्षा करना हिन्दुस्तानी अपना धर्म समझते हैं। किन्तु फिरंगी? तुम देश के शत्रु? देश का रक्त चूसा है तुमने? किस प्रकार धर्म-धन पर कुठाराघात किया है

क्या कोई भी भारतवासी भूल सकता है ? ओह ! कितना चूसा है तुमने फिरंगी ! और अब शरण चाहते हो ? मैं तुम्हारी रक्षा करूं ? मिड़िया मानो अपने से ही कह रही थी! उसने कहीं भी मार्ग न पाया। और जेनी की ओर देखने लगी।

ठण्ड में ठिठुरती हुई बालिका रो पड़ी। उसने जेनी की ओर देखते हुए कहा—"मां ! ठण्ड लगती है।" मिड़िया आगे न देख सकी—"अच्छा ठहरो बाबा से पूछती हूं।"

* * * *

हेग—-"बहन तुम देवी हो, सचमुच देवी हो। प्राणों की आज तुमने रक्षा कर ली। अहा कितना स्वादिष्ट भोजन था। कितने आराम से रात कटी। बहन कभी नहीं भूल सकता तुम्हारे इस अहसान को।"

मिड़िया----बाबा ! भैया जा रहे हैं।

बाबा----"बेटा हम लोग गरीब आदमी हैं, फिर मैं अन्धा ठहरा तुम लोगों को बड़ी तकलीफ हुई होगी।"

हेग----"गरीबी अमीरी का क्या सवाल है बाबा ! तुमने तो हमें ज़िन्दगी दी है, तुम सचमुच महान हो हमारे लिये तो प्रभु ईसा की तरह पूज्य हो। बाबा अब हम लोग जा रहे हैं हमें इजाजत दो।"

बाबा--"अच्छा बेटा जैसी मरजी, यह घर तुम्हारा ही है।"

*   *   *   *

मिड़िया अभी जेनी और हेग को पहुंचा कर लौटी ही थी, देखा कि एक फौजी दस्ता दरवाज़े पर खड़ा है। नायक बाबा से बातें कर रहा है। मिड़िया को देखते ही उसने कड़क कर पूछा----"बता रात को कौन तेरे यहां ठहरा था ?"

मिड़िया---"दो मुसाफिर और एक छोटी लड़की।"

"क्यों तूने उन फिरंगियों को ठहराया ? गरीब भारतवर्ष की छाती पर ठोकरें मारकर, उसे जोंक की तरह चूसने वाले नर पिशाचों को ?"

मिड़िया----"वे गरीब मुसाफिर थे। बड़ी रात गये आये और घड़ी रात बाकी थी, चले गये। बेचारों को तीन दिन से अन्न का दाना भी नसीब नहीं हुआ था। मैं कैसे लौटा देती उन्हें ? शरण में आये हुओं और भूखों के दुखी दिलों को कैसे ठुकरा देती....?...."

---"दुश्मनी स्त्री और बच्चों से तो थी नहीं।"

"लेकिन तुमने मुल्क के साथ विश्वासघात किया है। जानती है इसकी सज़ा क्या है !" ----नायक ने पुनः कड़क कर कहा

"हां जानती हूं सिर्फ मौत........" मिड़िया ने दृढ़ता से कहा।

"लेकिन नायक इसे नहीं भूलना चाहिये कि वे शस्त्र फेंककर हमारी शरण में आये थे और शरणागत की रक्षा करना हिन्दुस्थानियों का पैतृक धर्म है, फिर आप तो देश की स्वतंत्रता के वीर सिपाही.......... "

"चुप रह नादान छोकरी..........तुझे यह मालूम होना चाहिये कि इनका वार लगते ही ये बदरंग कुत्तों, कौवों की तरह हमारी बोटी-बोटी कटवा कर फेंक सकते हैं—" नायक ने कहा। उसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं—उसने फिर कहा— " तेरे भाइयों ने मुल्क की जो खिदमत की है उसे देखते हुए मैं तुझे छोड़ रहा हूं।..........नहीं..........तो........" फौजी दस्ता चला गया। ....

मिलिया सोच रही थी उसने देश को धोखा दिया है। उसके प्राण उसे धिक्कार रहे थे। लेकिन उसके दिल के एक कोने से आवाज़ आ रही थी। जब उसने बहन कहा था, तो भाई को ऐसी विपत्ति में देखना भारतीय नारित्व का अपमान था। उसने अधर्म नहीं किया वह निरपराध है। उसने मनुष्य की पूजा की है, मनुष्य भी नहीं, भारतीय नारी के गौरव की रक्षा की है।

× × × ×

सदियों के लिये वह विद्रोहाग्नि कुचल दी गई। सिपाही विद्रोह असफल हो गया। देश मृत्यु-सी शांति की गोद में फिर सो गया।

बाबा अपने पापों को भोगने के लिये जीवित थे। जग्गू के कन्धों पर पिता का भार था। भाग्य देवता अभी रूठे थे। लगान न चुकाने के कारण उसके खेत नीलाम पर चढ चुके थे। दो वर्ष से किसानों की दशा गिरती जा रही थी। कभी वर्षा झड़ी लगा देती तो कभी सावन सूखा निकल जाता। ज़मीदारों के अत्याचार से गांव के गांव खाली हो रहे थे। मज़दूरी तक मिलना कठिन था।

× × × ×

मिठिया और जग्गू बेघरबार भटक रहे थे। मेहनत मजदूरी करके पेट भर रहे थे। आज तीन दिन से वह भी नहीं मिली। गंगा के किनारे नीम के पेड़ के नीचे सन्तप्त परिवार पड़ा है, थोड़ी दूर पर कैम्प लगा है।

जग्गू न जाने किस आशा से उधर ही बढा जा रहा है। "तुम कौन हो ?"

जग्गू—"सरकार आज तीन दिन से मजूरी नहीं मिली है हम चार प्राणी हैं। सरकार कुछ मदद कर देते ! ठण्ड से बुरा हाल है. मेरे बाबा की तबीयत खराब है एक आध फटा पुराना कोई कम्बल ही मिल जाय तो आज की रात कट जाती, शायद अच्छे ही हो जांय ? थोडीसी कहीं आड मिल जाती वहीं-- किसी नौकर के साथ टिक कर रहता ?

जिला कलक्टर हेग ने एक बार जग्गू को ओर देखा और फिर----" हम कुछ नहीं सुनना मांगता। हमारे कैम्प में जगह नहीं है।"

जेनी---"-लेकिन बेचारा कहीं ठहर जाता एक कम्बल दिला दो बैरा से। बेचारे का बाबा बीमार है अपना क्या हर्ज है।"

"जेनी तुम नहीं जानती ये किसान बडे मक्कार होते हैं। इन हिन्दुस्तानियों का कोई भरोसा नहीं। हम हिन्दुस्तान में राज करने आये हैं। दया करने नहीं; चलो अब काफी ठंड है कैम्प में चलें।" और जग्गू बेचारा----निराश, एक दीर्घ निश्वास ले पेड़ की ओर.................................!

* * * *

आकाश में लाली दौड़ गई। एक नौका कहीं दूर से आ रही थी। कोई प्रभाती गा रहा था। पेड़ पर बैठी चिड़ियां चहक रही थीं। बाबा का निर्जीव शरीर पडा था, चार प्राणियों के बीच। स्वागत के लिये हार-सिंगार के फूलों ने सेज बिछाई थी। आकाश में अबीर उड़ रहा था।

× × × ×

एक अंगडाई ले जेनी उठी--"देखो कोई रो रहा है। मालूम होता है बुड्ढा मर गया।" हेगने करवटे बदलते हुए कहा--"होगा कोई! रोज ही मरने जीने हैं। किसको खबर रखें।" जेनी--"तुम्हें हो क्या गया है तुम्हारा दिल तो पत्थर-सा हो गया है। चलो

चलना ही होगा।" हेग झुंझलाता हुआ बाहर निकला। जेनी आगे जा रही थी और हेग अकुलाया हुवा पीछे पीछे।

बाबा के सर को गोदी में लिये मिड़िया रो रही थी। जग्गू हिचकियां भर रहा था, बच्चे बिलख रहे थे। जेनी आगे बढी--
"बहन मिड़िया.................."

"ओह! तुम? वह रो पडी। तुम्हारी यह दशा? दुर्भाग्य! हाय तुम्हारी सहायता? बाबा तुम चल बसे?"

हेग रूमाल से आंसु पोंछ रहा था। जग्गू ने देखा और मिड़िया ने गर्दन उठाई हेग गुनगुनाया----वह टहल रहा था। "बहन! मिड़िया! मिड़िया बहन!........शोक विह्वल प्रभात स्मशान जैसा शांत था।

१९ जून १९४१]

"शिकार"

[रचयिता----'सत्येन्द्र' खुजनेरी]

उस दिन रियासत में बड़ी धूम थी। सुबह से ही सिपाही सड़कों पर तैनात कर दिये गये थे। एक से एक बढ़िया कारें 'भों भों' करती हुई शहर की शांति भंग कर रही थीं। ये सेक्रेटरी सा०, ये सुपरिन्टेन्डेन्ट पोलिस और ये मैजर साहब; नागरिकों की अंगुलियां उठतीं, झुककर सलाम होती, और एक नाज़ अन्दाज़ से................साहब की जरा गर्दन झुक जाती और मुंह पर मुस्कराहट खेल जाती, ओर फिर कार आगे बढ़ जाती। रियासत में ऐसे कई अवसर आये थे। A. G G तथा P. A. के स्वागत के समय भी तैयारियां की गई थीं। किन्तु आज कुछ विशेषता थी। आखिर ९ बजे दीवान साहब की कार निकली। वह बढ़िया आस्टीन! देखते ही बनती थी। रंग-महल पर बड़े २ आफीसर, पूंजीवादी सेठ और अन्य कर्मचारी उपस्थित थे। बेचारी अबोध जनता सड़क के किनारे किनारे चुपचाप खड़ी थी, कोई बोलता भी था तो 'ओठों' में! मूक मौन जनता का प्रतिनिधित्व कर रहा था। उनके चेहरे कह रहे थे कि चाहे किसी का स्वागत हो या जनाजा, हमें उससे कोई सरोकार नहीं।

हिज हाइनेस के आने की प्रतीक्षा थी। मजलिस में कह-कहे लग रहे थे। पीं पीं करती हुई आखिर कार आ ही तो

धमकी ! हिज हाइनेस मखमली कपड़ों के लिबास में उतरे। गर्दने झुकीं, सलाम हुई, बैण्ड ने ध्वनि की और फिर सरकार अधरों पर मृदु मुस्कान लिये अपने रिक्त स्थान पर बैठ गये। फिर वही हंसी और वही कहकहे ! 'पर्सनल असिस्टेन्ट' ने एक तजकरा छेड़ा, सेक्रेटरी ने दाद दी और 'वाह-वाह' के साथ सारी मजलिस में हास्य की लहर फैल गई। फिर बातों ही बातों में यह खबर जनता में फैल गई कि....................के महाराज आने वाले हैं। जिनके स्वागत के लिये उनसे अतिरिक्त कर लिया गया है, बेगारें उठवाई गई हैं और उपहार में मिली हैं असीम यंत्रणायें तथा भद्दी गालियां। लोगों की आंखों में प्रतिशोध की अग्नि धधक उठी किन्तु फिर भी सब मौन थे। बिल्कुल मौन ! चेष्टाहीन !! शांत !!!

* * * *

"अबे सामने से हटजा ! रस्ता छोड दे !! साले को जरा भी नजर नहीं आता !!!" सिपाहियों की हिटलरशाही चल रही थी। बेचारे गरीब निरीह लोगों को धक्के दिये जा रहे थे; लोग कांपते थे, जबान पर ताले पडे हुए थे। गरीबों के रूप में मानवता का अपमान हो रहा था। यह सब उस प्रजा पर हो रहा था जिसका राजा मजलिस में कहकहों के बीच उसके गाढ़े पसीने की कमाई के सिगारों का धुंआं उडा रहा था। जिसका स्वामी, 'स्वामी' होते हुए भी दूसरों के हाथ का कठपुतला था, विलासिता का गुलाम था।

शी ! शी !! शी !!! क्रमशः 'सिपाही व्हिसलिंग' करने लगे। लोगों की उत्कण्ठा बढ़ गई। भीड़ में 'आगये, आगये' की एक सिरे से लहर उठी और आखिरी सिरे पर अपनी अन्तिम प्रतिध्वनि करती हुई विलुप्त हो गई। लोगों ने देखा, आंखें फाड़कर देखा, आपस में धक्का मुक्की करते हुए देखा--- महाराज आगन्तुक महाराज से हाथ मिला रहे थे। कर्मचारी आसपास खड़े थे और बेन्ड अनूठी शान से ध्वनियां और प्रतिध्वनियां कर रहा था। हां, तो महाराज ने हाथ मिलाया, न्योछावर हुई और फिर दोनों कार पर सवार हुए। पीं-पीं-पीं करती हुई कार आगे बढी। 'अन्नदाता की जय' जनता के शुष्ककंठ से एक आवाज़ निकली और शीघ्र ही विलीन हो गई।

* * * *

क्यों आये ? का सवाल सबकी आंखों में झूल रहा था। शिक्षितों को इसमें 'पॉलिटिक्स' की बू आ रही थी। प्रजामण्डल के सदस्य कहते 'फेडरेशन' के लिये विचार विनिमय करने आये हैं। कोई कुछ कहता और कोइ कुछ ! किन्तु बेचारी अशिक्षित जनता कह रही थी 'भाई हमने ज़माना देखा है, 'फेडरेशन वेडरेशन' बड़ों के पास कुछ नहीं है बड़ों के पास बड़े आया ही करते हैं।

किसी भी लिये क्यों न आये हों पर प्रोग्राम सबके सामने खुला हुआ था। शिकार होगा, पार्टी होगी, 'व्हिस्की' की बोतलें

साफ होंगी, निरपराध जानवरों का बलिदान होगा। महाराज उनकी तारीफ करेंगे वे महाराज की तारीफ कर देंगे। सुप्रन्बध की मीमांसा होगी, जनता की सुविधाओं का ज़िक्र किया जावेगा, सुधारों की घोषणा होगी, और फिर तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूंज उठेगा।

और आखिर हुआ भी वही। दूसरे ही दिन शिकार का प्रोग्राम स्वीकृत हो गया। हांके के लिये लारियां दौड़ने लगीं। समझा कर, प्रलोभन देकर, डांट-डपट कर लारियां भरी जाने लगीं। सिर्फ शिकार के लिये मानवता के खिलाफ ज़िहाद बोला जा रहा था। शेर का शिकार था। शस्त्रहीन शत्रु के लिये अस्त्र इकट्ठे किये जा रहे थे। 'इस बंदूक का निशाना ठीक बैठेगा, नहीं यह एक्सप्रेस ठीक नहीं रहेगी, यह अभी विलायत से नई मंगवाई है।' ए. डी. सी. अस्त्र शस्त्रों की गवेषणायें कर रहे थे।

आखिर तीन बजा। जी हुज़ूरों की कारें बड़ी शान-शौकत से रिआया के कलेजे पर मूंग दलती निकलीं और बाद ही बाद में निकले हिज हाइनेस! कार पर लाल झण्डी फहरा रही थी।

* * * *

माले पर तीन प्रमुख व्यक्ति थे, मेहमान, मेजबान तथा शिकार सेक्रेटरी। सबके चेहरों पर उत्कंठा थी। बंदूकें सधी

हुई थीं, लोग हांका कर रहे थे। आखिर शेर के स्थान पर शेरनी निकली। गुर्राती हुई उछल रही थी। उसका चेहरा कह रहा था कि यह तुम्हारी अनधिकार चेष्टा है। स्वतंत्र प्राणियों पर आघात करने का तुम्हें क्या हक ! उसके चेहरे पर उपेक्षा के भाव थे।

आखिर वह माले की ओर लपकी। सबके हाथ पैर फूल गये। हिज हाइनेस ने निशाना साधा। किन्तु दुर्भाग्य ! शेरनी छितरां गई और गोलियां बेचारे तीन दिन के भूखे प्यासे मजदूर का कलेजा पार कर गईं। खून का फव्वारा बह निकला। शिकार-सेक्रेटरी ने निशाना साधा और शेरनी तड़फ कर रह गई।

दोनों हिज हाईनेस संज्ञाहीन पड़े हुए थे। पंखे झले जा रहे थे। उपचार हो रहा था और उधर वह बेचारा किस्मत का मारा मजदूर कह रहा था—

'मे........ ....री............भूखी............मां..........
एक हिचकी आई और उसके प्राण पखेरू अनन्त की ओर पयान कर गये।

* * * *

कुछ दिनों बाद अंग्रेजी के अखबार में हिज हाइनेस का चित्र प्रकाशित हुआ। सामने शेरनी पड़ी हुई थी। सरकार के

हाथ में बंदूक थी और अधरों पर मृदु मुस्कान ! चित्र के नीचे लिखा हुआ था—

"आपने हाल ही में ७ फीट ३ इंच लम्बे शेर का शिकार किया है।

१३ जुलाई १९४३]

त्याग

[रचयिता—श्री गजानन सोनी]

"क्या तुम्हें स्वास्थ्य की कुछ भी चिन्ता नहीं ?"

बहिन ने गिड़गिड़ाते व प्रार्थना भरी दृष्टि से देखते हुए नगेन्द्र से कहा।

"इससे अभिप्राय ?" दृढ़ स्वर में उसने उत्तर दिया "अभिप्राय कुछ नहीं—यही कि कुछ दिनों के लिये 'पेरोल' पर छूट जाओ। स्वास्थ्य लाभ करने के पश्चात् फिर जेल में चले आना।"

"नहीं कदापि नहीं !!"

"यदि स्वास्थ्य ठीक रहा तो देश-सेवा अधिक कर सकते हो। किन्तु स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने से तो कुछ भी नहीं....।"

समय समाप्त होने की घंटी बजी। जेलर ने खाकी वर्दी पहिने आदमी को बुलाते हुए नगेन्द्र को ले जाने का संकेत किया। नगेन्द्र वैसे ही तीव्र प्रकृति का है। उसने जेलर से कुछ समय और मांगा। परन्तु नकारात्मक उत्तर मिला। नगेन्द्र चिढ़ता गया। फिर भी सन्तोष कर बहिन, पत्नी व मित्रों को देखता हुआ चला गया अपने उसी निर्दिष्ट स्थान की ओर....

वही चिर-परिचित झन-झन की आवाज़। सींखचेदार कोठड़ी में राजबन्दी। नगेन्द्र के हृदय में भावों का तूफान उठने लगा। कभी वह भारत की भावी राजनीति पर विचार करता, कभी मातृभूमि की आज़ादी के चित्र उसके नेत्रों में चित्रपट के समान आ जाते। कुछ ही क्षण पश्चात् फिर अतीत की वे स्वर्णमयी घड़ियां व भावी सुखद स्वप्न उसके मस्तिष्क में कल्पना गोचर होने लगते। इसी संघर्ष में नगेन्द्र की सारी उलझन, उच्छ्वास, उद्गार, कार्यक्रम, कल्पनाएँ निद्रा के साथ ही साथ कुछ समय के लिये स्थगित हो गये।

× × × ×

नगेन्द्र 'लॉ-कॉलेज' में पढ़ता था। राष्ट्रीयता की ओर अधिक लक्ष्य होने के कारण दिन प्रतिदिन उसकी रुचि गांधीजी की विचार धाराओं की ओर आकर्षित होती गई। उसका जीवनोद्देश्य ही राष्ट्र की सेवा बन गया।

आजादी के लिये कई आन्दोलन हुए किन्तु दब गये। अब की बार अखबारों में नेताओं ने स्वतंत्रता का जो आह्वान आरम्भ किया वह तीव्र क्रान्तिमय था। गुलामी का अभिशाप नवयुवकों के लिये असह्य हो चला। देश के दासत्व की लोह शृंखला तोड़ने के लिये वे आतुर हो उठे। उनका खून खौलने लगा। बाल-वृद्ध-वनिताओं के हृदय में जागृति की गहन भावना प्रज्वलित हो गई। वे स्वतंत्रता का सुखद स्वप्न देखने लगे।

नौ अगस्त के सूर्य ने भारत में नूतन प्रकाश फैलाया। नेताओं की गिरफ्तारी से आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। हज़ारों विद्यार्थी गोलीसे भून दिये गये, बूढ़ी माताओं की हरी-भरी गोद उजड़ गई, नवविवाहिता षोडषी वधुएँ वैधव्य की पीड़ा से बिलखने लगी। राष्ट्र के अनेक तरुण सिपाही काल कोठरी में बन्द कर दिये गये। तरुण विद्यार्थियों का दिल यह नग्न अत्याचार देख तड़फ उठा। वे कालेज व स्कूल छोड़ आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे।

नगेन्द्र नेता के रूप में आगे आया। उसने विद्यार्थियों में जोश व उत्साह की भावना जागृत कर दी। वह नवयुवकों की आशा का प्रतीक बन गया। सभापति के कार्य ने उसे खाने-पीने का अवकाश भी न दिया। सदैव नगेन्द्र अपने साथियों में अहिंसात्मक आन्दोलन की चर्चा करता दिखाई देता। उसके इस कार्य पर शहर के अन्य नेताओं ने भी प्रशंसा की व उसके साहस की सराहना सदैव युवक-युवतियों से सुनाई दी।

नगेन्द्र अगस्त १४ को कर्मचारियों द्वारा गिरफ्तार किया गया। उसके पकड़ते समय भी मुख से केवल 'आज़ाद भारत जिन्दाबाद' 'महात्मा गांधी की जय' की ही ध्वनि सुनाई दी। उसके इन नारों के साथ हजारों की भीड़ ने तुमुलघोष के साथ इन्ही नारों की आवाज को बुलन्द किया। जुलूस में से कुछ अन्य साथी भी पुलिस के शिकार बने। इस प्रकार वह पूरी टोली स्वतंत्रता के नारे लगाती अपना कर्तव्य निभाती रही।

इन्हें सरकारी लॉरी में ठूँस, तुरन्त ही 'जेल' भेज दिया। देश सेवा का सच्चा पारितोषिक उन देश—सेवकों को यही मिला।

*　　　*　　　*

नगेन्द्र लाखों का स्वामी है। मोटर, जमीन-जायदाद, घर—बार—कहने का तात्पर्य यह कि एक वैभवशाली का समस्त साजो—सामान उसे उपलब्ध है। मकानों की ही केवल इतनी आय है कि यदि वह चाहे तो ऐश्वर्य से अपने कुटुम्बियों के साथ जीवन व्यतीत कर सकता है। परिवार के भी सब सुख उसे प्राप्त हैं। भाग्यसे पत्नी सुनिता व बहिन का सहयोग उसके जीवन के स्वर्गीय आनंद की प्रतिवृद्धि में सहायक हैं।

किन्तु..........नगेन्द्र अपने मित्रों के साथ जेल की चहार-दीवारी में बन्द है। उसने चतुरता व कौशलता पूर्वक ऐसा संगठन कर दिया है कि उसकी गिरफ्तारी के पश्चात् भी आन्दोलन उसी उग्र रूप से चल रहा है। शिथिलता लेश मात्र भी नहीं। हां, इतना अवश्य है कि दिवस-प्रति-दिवस उसके जेल साथियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। जेलर को चैन नहीं मिलती। नगेन्द्र की समय-समय पर नई-नई मांगों ने उसे तंग कर दिया है।

*　　　*　　　*

जेलर जालिमसिंह बड़ा काइयां आदमी है। उसने कई सत्याग्रह के सत्याग्रही खिलौनों को खिलाया है। सफल मछुए

की तरह कई छोटी-छोटी मछलियों को फँसाने में सफल भी हुआ। बड़े सरल स्वभाव से उसने नगेन्द्र से कहा—"मि० नगेन्द्र मुझे तुमसे दिली हमदर्दी है। यदि तुम चाहो तो एक कागज़ पर 'कुछ' लिखकर अपने मित्रों के साथ छोडे जा सकते हो।"

नगेन्द्र जानता था कि वह 'कुछ' क्या है।

नगेन्द्र जेलर की चालबाजियोंसे परिचित था। उसने दृढ़ स्वर में कहा:—

"जेलर साहब! एक हिन्दोस्तानी के नाते मैं आपसे ऐसी आशा नहीं करता था। मुझे कितने ही कष्ट क्यों न सहन करने पड़ें, मैं माफी मांगकर नहीं जाना चाहता। जिस शान के साथ मैं अन्दर आया हूँ उसी शान से बाहर जाऊँगा। मुझे कष्टों की पर्वाह नहीं।"

जेलर के तलवे से धरती खिसक गई। परन्तु फिर भी उसने सफल बहेलिये के समान अपने शिकार पर एक तीर और छोड़ा। वह बोला—"तुम अपने सुखी-जीवन को छोड़कर इन सूखी रोटियों पर क्यों आमादा हो इस तरह जेल में ज़िन्दगी गुजारने से क्या फायदा?

"आज सारा भारत ही कारागृह बना हुआ है। वह परतन्त्र है। हमारे पूज्य बापू ने उसकी आज़ादी की रणभेरी बजाई है। इस रणभेरी की आवाज़ पर सैकड़ों युवकों ने हँसते-हँसते अपने मस्तक न्यौछावर कर दिये। शूली को झूला समझ

झूले। तो क्या मैं बापू की ललकार पर, देश की आजादी पर अपना सर्वस्व बलिदान न कर दूँ ? ये कायरों की सीख देते आपको लज्जा नहीं आती ? क्या दुनिया का कोई वैभव भारत की आजादी से बढ़ कर है ? " इस पावन अनुष्ठान के आगे वह क्षण-भंगुर वैभव तुच्छ है। यदि हमारा यह रक्त जननी-जन्मभूमि के काम नहीं आया तो व्यर्थ है। "नगेन्द्र ने जोश में आकर कहा।

जेलर की आशा निराशा में परिवर्तित हो गई। वह त्यागी देशभक्त उसकी फेंकी जालमें न फँस सका।

नगेन्द्र धारा २६ के अन्तर्गत्त बन्दी है। उस पर कोई मुकद्दमा नहीं चलाया गया। सब सुखों को ठुकरा कर वह दृढ़ता का आदर्श बना हुआ है। पेपरों ने उसके त्याग की प्रशंसा के गीत गाये व विद्यार्थियों में भी उसके त्याग की चर्चा चल रही थी।

९ अगस्त १९४३।

फीस

[रचियता—श्री 'अहसन']

"आज इतनी देर तक कहां रहे बेटा ! देखो तो आटा न होने की वजहसे अब तक रोटी नहीं पकी, चटनी तो पिसी पिसाई रखी है। अब गेहूं पिसवाकर लाओ तो अब कहीं रोटी पके और खाना खायें।" 'आखिर क्या किया जाय अम्मी ? शिक्षा का विशेष प्रेम, रहन सहन की यह ऊंची सतह और ग़रीबी की यह हालत। मुझको शायद खुदाने अपने सह पाठियों के हंसी और मज़ाक उड़ाने के लिये ही पैदा किया है। अम्मी ! ज़रा पर्देसे बाहर आकर देखो लोग कैसी कैसी ज़र्क बर्क पोशाकें पहनकर आते हैं। और मैं !....मैं तो उन्हें सिर्फ देख सकता हूँ पहन नहीं सकता। आज जूता बिलकुल बेकार हो गया था लेकिन फिरभी कहने को पांवमें जूता था। अगर एक बार और अच्छी तरह मिल जाता तो दो चार दिन काम चल जाता। जब स्कूल गया तो एक साहब बोले के— 'अमा ! जूता पुराना हो गया है बेचारे से कब तक काम लोगे, पेन्शन भी दो।' दूसरे साहबने भी कुछ इसी क़िस्म के अलफाज़ चुस्त किये और तीसरेने तो पाव से खींच कर तालाब में फेंकने के बाद सचमुच ही पेंशन देदी। छुट्टीकी घन्टी बजने के बाद मैं स्कूल के दरवाज़े पर चोकीदार से बातें करता रहा और जब अंधेरा हो गया तो यहांतक आया।"

"दिन ही के वक्त आ जाते। आखिर रातको भी तो नंगे पांवही आना पड़ा।" दिनके वक्त आ तो जाता अम्मी! लेकिन अपने सह पाठियों और राहगीरोंके तानों और मजाक को कौन बरदास्त करता, मैं या मेरा खुदा?"

"खुदा को क्यों बीचमें लाते हो बेटा! खुदासे और मज़ाक किया जाय! कैसी बुरी बात है।"

"हां मुझसे तो मज़ाक किया जाय और खुदा से न किया जाय। सुनते हैं के खुदा गरीबों का खुदा है, तो फिर खुदाके इन गरीबों का मजाक उड़ाना खुदाका मजाक उडाना नहीं तो और क्या है।"

'अरे! अरे!! क्या बकते हो तुम? खुदाका खोफ करो! तोबा करो!! कहीं उसका एताब तुमपर नाजिल न हो जाय।"

"हां अम्मी! तोबा सिर्फ गरीबों के लिये है। और अमीर इतने गुनाहों के बाद भी तोबा का नाम नहीं लेते। खैर, छोडो इन बातों को। रात ज्यादा हुई जा रही है, लाइये गेहूं कहां हैं, पिसवा लाऊं नहीं तो चक्की बंद हो जायगी।"

बेटे और मां के दरम्यान जब ये बातचीत खत्म हो चुकी तो आसमान पर अनाज बांटनेवाले फरिश्तोंने एक दूसरे से कहा "देखा तुमने! ग़रीब विद्यार्थी खुदासे बाग़ी हुआ जा रहा है।"

दूसरे दिन विद्यार्थी को फिर स्कूल जाना था। लेकिन पांव में जूता नहीं था। जानेसे पहले उसने बैठकर कुछ देर सोचा। क्या सोचा? ये नहीं मालूम। लेकिन उसके दिमाग में गैरत, स्वाभिमान, गरीबी और तालीम के दरम्यान एक अजीब कश्मकश जारी थी। आखिर कार वह नंग पांवही चल खड़ा हुआ। शायद तालीमने सबपर फतहपाली थी।

स्कूल में दिन भर क्या गुजरी? येन पूछो। सब से पहले तो मास्टर साहब ही ने ये फरमाया—"तुम अजीब इंसान हो। तीन महीने की गेम्स फीस चढ़ी हुई है वह अभी तक अदा नहीं की। छःमाही इम्तहान होने वाला है उसकी फीस अदा करने का नाम नहीं लेते खैर, फीस न अदा करने के तो आप आदी ही हैं लेकिन ये जूता न पहनने की आदत कबसे पड़ गई है, आज आपके पांवमें जूता नहीं है और कल....।"

"शायद पायजामा गायब हो जायगा।"—एक लड़के ने कहा। भई? ये खिलाफ-एटिकेट बातें स्कूलमें अच्छी नहीं।" —मास्टर साहब ने अपना सिल सिलाए कलाम जारी रखते हुए कहा। "स्कूल आना है तो ढंग से आओ वरना अपने घर बैठो, मजदूरी करो और कमाओ।"

जब मास्टरने इतना कुछ कह दिया तो लड़कों ने क्या कुछ न कहा होगा। कैसे-कैसे 'टूथ-पावडर' से साफ किये हुए दांत बे साख्ता बाहर निकल आये होंगे। कह कहाओंकी रङ्ग-बरङ्गी राग-नियोंके नित नये स्वर पैदा हुए होंगे और क्या-क्या न हुआ होगा।

जब वो घर आया तो अपनी अम्मीके सामने बेसाख़्ता रोने लगा। दिनभरकी दास्तान सुनाई और अपनी ग़रीबी का मातम करते-करते फिर खुदा की शान में अजीब-अजीब बातें लगा। उसकी अम्मीके पास आखिरमें तसल्ली देने के लिये सिर्फ ये शब्द रह गये। "बेटा! ये दुनिया वाले हैं हँसते हैं, हँसने दो।"

दुनियावाले हंसते रहे और वो सबके साथ उनकी हँसी बरदाश्त करता रहा। आखिर कार एक दिन वो भी आया के वो हँसते-हँसते उकता गये और ये उनकी हँसी से अच्छी तरह परिचित हो गया। उस वक्त उसे मालूम हुआ कि ज़माना उसको नहीं बनाता बल्के वह खुद ज़माने को बना सकता है और उसमें वह ताक़त मौजूद है जो सभ्य समाज को अपना हम-आवाज़ होनेपर मजबूर कर सकती है।

* * * *

सालाना इम्तहान क़रीब आगया। तैयारी भी पूरी होगई। लेकिन फीस कहाँसे अदा की जाती। आज फिर वह अम्मीके सामने रो रहा था लेकिन बेचारी अम्मी करती तो क्या करती। उसके पास तो कुछ भी नहीं था।

अम्मी की जान से ना उम्मीद होकर चारों तरफ मांगता फिरा। कहीं कुछ न मिला। आखिर कार फिर अम्मी के पास आया और रोकर कहने लगा—"अब क्या करें अम्मी! फीस के बगैर तो इम्तहान में शरीक होना नामुमकिन है।"

बेचारी अम्मी क्या करती ? जवान विधवा घरसे बाहर भी तो न जासकती थी। लेकिन उसने जाने किस उम्मीद पर अपने चौदा साल के नन्हे से (जो उसकी नजर में अभीतक नन्हा ही था) वादा कर लिया कि मैं सुबह तक तुम्हें बीस रुपये कहीं न कहीं से लाकर दे दूंगी। नन्हें को कुछ इतमीनान हो गया। वह रात गये तक अपनी अम्मीसे भविष्य के बारेमें बातें करता रहा। उसने अपनी अम्मी को बताया कि वह मैट्रिक के बाद क्या करेगा ? और किस तरह आगे चलकर एक बड़ा अमीर बन जायगा।

वो दोनो इस वक्त अपने आपको एक बड़ा अमीर समझ रहे थे। और शायद ऐसाही कुछ समझकर उसकी अम्मीने अपने नन्हें से ये कह दिया के " बेटा ! अब तुम शादी न करोगे ?

" शादी करलूं ? लेकिन अभी तो मैं कम-उम्र और गरीब हूं अम्मी। " " हिन्दुस्तान में तो कम-उमरी में भी शादियाँ हो जाया करती हैं। मगर हाँ, मैं मौजूदा गुर्बत को जरूर भूल गई थी— देखो तो बेटा ! गरीब तो अमीरीका ख्याल करके खुश हो लेते हैं लेकिन ये अमीर लोग किस चीज के ख्याल से खुश होते होंगे ? खैर, रहने दो इसको। अब तो तुम शादी की बात करो। हाँ, तो मैं कह रही थी कि तुम्हें गरीब रहकर भी शादी करनी ही होगी। "

" नहीं अम्मी ! सच पूछो तो गरीबों को शादी करने का हक ही नहीं है। आखिर ये शादी करते ही क्यों हैं ? ये

ग़रीब लोग भी कितने बेवकूफ होते हैं। सरमायादारोंसे लड़ने के लिये कभी तो सत्याग्रह करते है, कभी जैल जाते हैं और कभी 'हंगर-स्ट्राइक' शुरू कर देते हैं। मुझे तो इन चीजों में से कोई एक भी पसन्द नहीं। अगर वो मेरी बात मानें तो ऐसा करें कि इस 'हंगरस्ट्राइक' की बजाय 'फेमिली-स्ट्राइक' या 'मेरिज-स्ट्राइक' शुरू कर दें—यानि शादियाँ करना छोड दें। ये बात अजीब तो मालूम होगी अम्मी! लेकिन इसमें एक बड़ी चीज़ छुपी हुई है वो ये कि जब ग़रीब लोग शादियाँ न करेंगे तो उनका वंश मिट जायगा और दुनियाभर में फिर अमीर ही अमीर रह जायेंगे। फिर क्या होगा? इन लोगों को कहीं ढूंढ से मजदूर नहीं मिलेंगे। और मजबूरन फिर खुद ग़रीबों की तरह मजदूरों का काम सम्भालना होगा उस वक्त इन बड़े-बड़े पेट वालोंको मालूम तो होगा कि बेचारे गरीब किस मुसीबत में ज़िन्दगी बसर करते थे और...........।"

"तुम तो बकते हो बेटा!"—उसकी अम्मीने बात काट कर कहा। और फिर खुदही कुछ सोचने के बाद हँसकर बोली "देखो तो एक गरीब बेवकूफ अमीरोंको अपनी सिर्फ अपनी मुसीबत का एहसास कराने के लिये अपना पूरा वंश कुर्बान करने को तैयार होगया है।"

"नहीं अम्मी! मैं जो कुछ कहता हूँ ठीक कहता हूं। बिलकुल ऐसाही करना चाहिये।"

"नहीं बेटा ! ये नामुमकिन है। अच्छा अब तुम ज्याद बातें नकरो ! सोजाओ ! मैं भी सोती हूँ।"

नन्हा तो सोगया लेकिन वो न सोई क्यों के उसे अभी नन्हे की फीस के लिये कहीं न कहीं से रुपये लाकर देनाथे। वो घर से बाहर निकली और करीब ही के एक पक्के मकान में चली गई। ये एक अविवाहित वकील साहब का मकान था जो नन्हे के वालिद की मृत्यु के बाद अक्सर उसकेघर के चक्कर काटा करते थे। मुमकिन हैं के उन्हें नन्हें की वालदा से कुछ हमदर्दी हो। शायद इसी वजह से वो फीस के लिये उनसे रुपये मांगने गई थी। वो सुबह सवेरे रुपये लेकर घर वापस आई। नन्हें पर एक हसरत भरी निगाहडाली, उसके सरहाने तमाम रुपये रख दिये, और खुद एक हमेशा की नींद सोगई। मुमकिन है कि उसकी गैरतमंद जिन्दगी से मौत को अच्छा समझा सुबह जब नन्हें की आंख खुली तो उसके सरहाने फीस की रकम से कहीं ज्यादे रुपिये पाये गये। लेकिन नन्हें को ये आजतक मालूम न हुआ कि उसकी प्यारी अम्मी उसे इस तरह अकेला छोडकर क्यों चलीगई ?—!

१२ जनवरी १९४४

बस

अपूर्व संग्रह

शुभ चिंतकों एवं ग्राहकों के दैनिक उपयोग के लिये

* कमरों की सजावट के लिये हाथ के बने हुए सुन्दर पड़दे, बेडकवर, टेबल क्लॉथ आदि ।
* कोटिंग और शर्टिंग, साड़ियां और धोतियां
* टॉवेल, चद्दर और दैनिक काम में आने वाले सब प्रकार के कपड़े

सुन्दर, सस्ते और मजबूत

झालानी ब्रदर्स

जूना तोपखाना [पोस्ट ऑफिस के पास] इन्दौर

लक्ष्मण आर. मेहता

लिखित

हम-तुम

(उपन्यास)

शीघ्र ही प्रकाशन के पथ पर आरहा है ।